

बहुचर्चित
दि फाइनल ऑर्डर
(अन्तिम आदेश)

लेखक कृष्णकान्त

विषय – सूची

प्रस्तावना	पृष्ठ संख्या
भूमिका	१
प्रमाण	३
अन्तिम आदेश के स्वभाव और प्रसंग से संबंधित आपत्तियाँ	९
‘ अपॉइंटमेंट टेप (नियुक्ति का टेप)	३४
संबंधित आपत्तियाँ	४४
निष्कर्ष	७९
ऋत्विक क्या है ?	८०
आकृति	८२
परिशिष्ट :	
9 जुलाई 1977 का पत्र	(i)
अन्य प्रमाण	(ii)
श्रील प्रभुपाद की वसियात (4 जून 1977)	(xi)
एवं कोडिसिल (संशोधन) (5 नवम्बर 1977)	(xiv)
श्रील प्रभुपाल के उपदेशों में प्रासंगिक प्रमाण :	
- क्या गुरु को उपस्थित होना अनिवार्य है ?	(xvi)
- आदेश का अनुसरण करो, शरीर का नहीं ।	(xxi)
- श्रील प्रभुपाद की प्रस्तकें ही पर्याप्त है ।	(xxi)
- श्रील प्रभुपाद हमारे शाश्वत गुरु है ।	(xxii)

प्रस्तावना

हाल ही में लिखे गए 'इन्साइडर एण्ड आउटसाइडर परसेपशन्स ऑफ श्रील प्रभुपाद' लेख पर मैं सोच—विचार कर रही थी। इससे मुझे वर्तमान में चर्चित विषय 'गुरु— शिष्य परम्परा और इसमें श्रील प्रभुपाद के अंतर्धान होने के उपरान्त गुरुओं की भूमिका' पर विभिन्न भक्तों द्वारा प्रकट भिन्न—भिन्न दृष्टिकोणों को ठीक से समझने और जानने में सहायता मिली। वैसे मैं इससे पहले घटित घटनाओं से परिचित थी जब अनेक गुरु अपने आध्यात्मिक स्तर से गिर कर पथभ्रष्ट हो गये थे। उस समय इन घटनाओं के कारण स्थिती संकटपूर्ण और चिन्ताजनक हो। इस घटना के बाद जो गुरु पथभ्रष्ट एवं पतित हो गए थे उनके शिष्यों, गुरु भाइयों एवं गुरु बहिनों के जीवन में आतंक और शोक छा गया था।

इसके उपरान्त ८० के अंत में गुरु सुधार हुए और कई अन्य व्यक्तियों की तरह मैंने भी यह आशा की इन गुरु सुधारों के फलस्वरूप इस्कॉन के नेतृत्व और दीक्षा संबंधी समस्याओं का हाल निकल जाएगा। लेकिन अब इस लेख के लिखने से पूर्व मैंने इस विषय पर पुनः कई विवाद पढे, कुछ वर्तमान गुरु प्रणाली के समर्थन में और कुछ इसके विरोध में। मैंने गुरु और परंपरा के विषय में कई विद्वानों की टिप्पणियों का अध्ययन भी काफी सजीव है। हाल ही के 'जनरल आर्ग्युमेंट्स ऑन स्टडीस' के पाँचवें प्रकाशन में गुरु परम्परा से संबंधित एक लेख में जेन ब्रजेजिनस्की ने इस विषय के कई पहलुओं की चर्चा की है। उन्होंने चर्चा करते हुए इस्कॉन के भविष्य के लिए योग्य एवं प्रतिभाशाली नेताओं की जरूरत पर बल दिया। वैसे उनका दृष्टिकोण कई दृष्टिकोणों में से एक है। फिर भी इससे हमें इस विषय की महत्त्वता और गंभीरता का अभ्यास होता है जिसके कारण इस्कॉन के अन्दर रहने वाले ही नहीं अपितु बाहर वाले भी इस विषय के बारे में सोचने को प्रेरित हो उठे हैं।

सन् १९९६ के अंत में मुझे 'द फाइनल ऑर्डर' पढ़ने को कहा गया ताकी मैं इस विषय के बारे में अपने विचार प्रकट कर सकूँ और इस लेख में उठाये गये कई प्रश्नों के बारे में चर्चा कर सकूँ। इस लेख को पढ़ने के बाद मेरे मन में कोई संदेह नहीं रहा कि यह विषय इस्कॉन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है और इस विषय पर कई भक्त बहुत गंभीरता से सोचते हैं। मुझे यह लगा कि इस लेख ने कई महत्वपूर्ण प्रश्न खड़े किए हैं। जैसे— आध्यात्मिक अधिकार एवं अधिपत्य और उसका प्रतिपादन कैसे हो? भगवान कृष्ण के प्रतिनिधी अथवा गुरु और शिष्य संबंध क्या है? हमारी भक्तियुत पूजा, सम्मान और सत्कार का पात्र कौन बने? एक बाहर का व्यक्ति होने के कारण मैं पूर्ण रूप से इस विषय को समझने में और कोई निर्णय लेने में असमर्थ हूँ। (मैं इस्कॉन में चलित वर्तमान आचार्य प्रणाली के समर्थन एवं विरोध में दिए गए प्रमाणों की तुलना करने में भी असमर्थ हूँ)। अपनी असमर्थता के बावजूद मैं इस बात की प्रशंसा करती हूँ कि इस लेख में बहुत ही गंभीरतापूर्वक एवं प्रमाणिक रूप से यह स्थापित करने की चेष्टा की गयी है कि श्रील प्रभुपाद ने ऋत्विक् प्रणाली को स्थापित किया था और वे यह ऋत्विक् श्रील प्रभुपाद की ओर से दीक्षा प्रदान करें। मुझे यह उम्मीद है कि यह लेख अत्यधिक ध्यानपूर्वक पढ़ा जाएगा और बड़े पैमाने पर इसकी चर्चा होगी। मैं इस पर ध्यान देने की बात इसलिए नहीं कर रही हूँ क्योंकि मैं इस लेख का समर्थन करती हूँ या विरोध; बल्कि इसलिए कि इस लेख में उठाया गया विषय सभी स्तरों के लोगो का ध्यानकर्षण करता है। हर भक्त के लिए यह विषय बहुत महत्वपूर्ण है।

इसमें कोई शक नहीं कि मुझ जैसे बाहर के व्यक्ति के लिए इस तरह प्रस्तावना लिखकर अपने आप को आंतरिक मामलों में सम्मिलित करना बुद्धिमत्ता नहीं है फिर भी इस संस्था के प्रति मेरी आसक्ति और सभी भक्तों के प्रति मेरे हृदय में रहने वाली शुभकामनाओं ने मुझे यह लिखने के प्रेरित किया है।

फरवरी, १९९७

किम नॉट,
वरिष्ठ अध्यापिका
धार्मिक विद्यापीठ,
लीड्स महाविद्यालय इंग्लैण्ड

भूमिका

यह दस्तावेज श्रील प्रभुपाद के उन निर्देशों को प्रस्तुत करने का नम्र प्रयास है जो उन्होंने 'गवर्निंग बॉडी कमीशन' जी.बी.सी. को अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनानृत संघ में दीक्षा प्रणाली जारी रखने के लिये छोड़े थे। वैसे हम यहाँ ऐसे कई दस्तावेजों एवं लेखों को देखेंगे जो वरिष्ठ इस्कॉन भक्तों ने उपर्युक्त विषय पर लिखे हैं, परन्तु मुख्यतः हम जी.बी.सी. द्वारा प्रकाशित अधिकारिक दीक्षा पुस्तक 'गुरुस एंड इनिशिएशन इन इस्कॉन' इस्कॉन में गुरु एवं दीक्षा' जिसे आगे से हम जी.आई.आई. कहेंगे, और 'ऑन माय ऑर्डर अन्डस्टुड' लेख जो इस्कॉन कानून सेक्शन १.१ में निर्दिष्ट है, को सदर्भ में लेंगे :

“जी.बी.सी. 'ऑन माय ऑर्डर अन्डस्टुड' लेख को अपनी पूरी मान्यता देकर उसे स्वीकार करती है। यह लेख गुरु परम्परा को जारी रखने के लिए श्रील प्रभुपाद की इच्छाओं को लेकर जी.बी.सी. के इस विषय में अंतिम सिद्धांत को स्थापित करता है। इस अंतिम सिद्धांत को इस्कॉन के कानून के रूप में पारित किया जाता है।” (जी.आई.आई. पृष्ठ १)

जी.आई.आई. में जी.बी.सी. का उद्देश गुरु, शिष्य एवं गुरु तत्व से संबंधित इस्कॉन के कानूनों को स्पष्ट करना एवं सदर्भ में लाना है जिससे इस विषय पर अंतिम सिद्धांत स्थापित हो सके। हम प्रार्थना करते हैं कि यह लेख भी इसी तथ्य के अनुरूप है।

पूर्ण स्पष्टता एवं आध्यात्मिक प्रमाणिकता के लिय हम जी.आई.आई. की एक – दो खामियों को परिप्रेक्ष्य में लाना चाहेंगे, जिनको यहाँ संबोधित नहीं किया गया था। वैसे कुछ विवादित विषयों के प्रत्युत्तर एवं हल प्रारम्भ में आघात या घबराहट पैदा कर सकते हैं, फिर भी हमें पूर्णरूपेण विश्वास है कि इन खामियों को इसी वक्त सुधारने से भविष्य में कम लोग भ्रमित एवं पतभ्रष्ट होंगे। पूर्व में भी इस्कॉन की गुरु प्रणाली निरीक्षण में आई है और कई बदलाव भी आये – कुछ चिन्ह निकाले गये, रीतियाँ कम हुई, विचारधाराएँ बदली गयी – सब बिना ज्यादा लम्बी उथल – पुथल के।

इसमें कोई संशय नहीं कि इस्कॉन इस धरती पर सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। इसलिये हमें विशिष्ट सावधानी बरतनी होगी कि हम इस्कॉन के प्रबंधन एवं अध्यात्म संबंधी संस्थापकाचार्य द्वारा प्रतिपादित सारे प्रावधानों से लेश मात्र भी अलग न हों। वे तो सिर्फ यह चाहते थे कि बड़ी सावधानी और परिश्रम से उनके द्वारा बनायी गई संस्था का इसी प्रकार और विस्तार किया जाता रहे।

यह श्रील प्रभुपाद शताब्दी वर्ष है। इससे अच्छा और कौनसा समय हो सकता है जब हम श्रील प्रभुपाद के आन्दोलन को चलाने के अपने प्रयासों का बारीकी से निरीक्षण करें ?

यह हमारा प्रबल मत है कि इस्कॉन की वर्तमान गुरु प्रणाली को श्रील प्रभुपाद के अंतिम हस्ताक्षरयुक्त आदेश के अनुसार बदला जाये। यह आदेश दीक्षा संबंधित अंतिम आदेश था जो ६ जुलाई १९७७ (कृपया परिशिष्ट

देखें) को जारी किया गया था। प्रायः कुछ लोग हमसे प्रश्न करते हैं कि हम इसी पत्र पर इतना बल क्यों देते हैं? उत्तर मे हम जी.बी.सी. द्वारा प्रकाशित जी.आई.आई.पुस्तिका से ही दुहाराएँगे:

‘तर्कशास्त्र मे, वाद के कथन से ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं।’

(जी.आई.आई., पृष्ठ २५)

६ जुलाई का पत्र संपूर्ण संस्था को संबोधित था। इस्कॉन में दीक्षा प्रणाली का यह इस तरह का अंतिम आदेश है अतः इसकी अपनी एक अलग ही श्रेणी है। यहाँ हम प्रदर्शित करेंगे कि इस पत्र को इस्कॉन में पूर्ण रूप से मानने और लागू करने से श्रील प्रभुपाद के बाकी उपदेशों का उल्लंघन नहीं होता।

न तो षड्यंत्र की अफवाहों से हमारा कुछ सरोकार है और न ही कुछ बचारे भक्तों की आध्यात्मिक मुश्किलों को उछालने की इच्छा। जो हो गया सो गया। वैसे हम पुरानी गलतियों से सीख सकते हैं, परन्तु हम भविष्य में प्रेम, सौहार्द और क्षमा के वातावरण की अपेक्षा करते हैं अतः हम पुरानी बदनामियों और गलतियों को उछालना नहीं चाहते। जहाँ तक हम लेखकों का मत है, इस्कॉन के ज्यादातर भक्त श्रील प्रभुपाद को संतुष्ट करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इसलिए यह असम्भव है की कोई जानबुझकर संस्थापकाचार्य के सीधे आदेश का उल्लंघन कर रहा हो या यह करने पर दूसरों को मजबूर कर रहा हो। फिर भी, किसी प्रकार से, पिछले 16 वर्षों में प्रबंधन एवं प्रचलन में कुछ गलतियाँ इस्कॉन संघ में आवृष्ट हो गयी हैं। इन गलतियों को दिखलाते हुए हम प्रार्थना करते हैं कि श्रीकृष्ण एवं श्रील प्रभुपाद की सेवा-भक्ति करने में श्रद्धालुओं की अनावश्यक बाधाएँ दूर हो सकें।

इस पुस्तिका में हम स्वयं श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रकाशित हस्ताक्षरयुक्त दस्तावेज एवं वार्तालाप की प्रतिलिपियों को प्रमाण की तरह प्रस्तुत करेंगे—प्रमाण जो स्वयं जी॰बि॰सी॰ भी प्रमाणिक मानते हैं। फिर हम इन प्रमाणों को विषय एवं संदर्भ में रखकर यह देखेंगे कि उन्हें अक्षरशः लेना चाहिए या ऐसे दूसरे आदेश भी हैं जो इन आदेशों के मतलब को बदल देते हैं या उनके पालन में किसी तरह का संशोधन करते हैं। हम उन संबंधित प्रश्नों की चर्चा पूरी करेंगे जो की इन प्रमाणों पर उठाये जाते हैं। हम ६ जुलाई के पत्र को अक्षरशः लागू करने पर की गई आपत्तियों का भी प्रत्युत्तर देंगे। अन्त में हम यह भी देखेंगे कि 'ऑफिशिएटिंग आचार्य सिस्टम' (अधिकारित्वक आचार्य प्रणाली), जो ६ जुलाई के पत्र में बताई गई है, को किस तरह न्यूनतम अशांति से लागू किया जा सकता है।

हम अपने सारे तर्क पूर्ण रूप से श्रील प्रभुपाद के आदेशों और उपदेशों पर आधारित करेंगे जो उन्होंने अपनी पुस्तको, पत्रचार, प्रवचन एवं वार्तालाप में दिये थे। हम अनन्य वैष्णव वृन्द से आशिर्वाद चाहते हैं कि हम किसी को भी न तो अपराध पहुँचाएँ और न ही कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए॰सी॰ भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के मिशन को किसी प्रकार की क्षति।

प्रमाण

श्रील प्रभुपाद का यह स्वभाव चिर — परिचित था कि वे हर काम बड़ी सावधानी और पटुता से करते थे। उनकी एक विशेषता थी कि वे अपनी भक्तियुत सेवा के हर पहलू या अंग पर बड़ा ध्यान देते थे और कभी किसी प्रकार की लापरवाही नहीं करते थे। जिन लोगों ने उनकी अत्यधिक निकट से सेवा की थी उन्होंने प्रभुपाद जी का भगवान श्रीकृष्ण के प्रति असीम प्रेम और भक्ति को प्रमाणित किया था। उनका सम्पूर्ण जीवन उनके गुरु श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर के आदेश का पालन करने के लिए न्यौछावर था। उन्होंने अपने गुरु के आदेश को अपना कर्तव्य समझा और इस कर्तव्य का पालन करने में वे हमेशा अदभुत रूप से सतर्क एवं सजग रहे। इस्कॉन को स्थापित करने के कार्य में उन्होंने किसी भी प्रकार की कमहीनता एवं लापरवाही की संभावना नहीं छोड़ी। इस कार्य के लिए वे हमेशा अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते और गलतियों को सुधारते रहते थे। उनका यह आंदोलन ही उनका जीवन था। उन्होंने यहा तक कहा था कि इस्कॉन उनका जीवन है।

श्रील प्रभुपाद के व्यक्तित्व के इस पहलू को समझने से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रील प्रभुपाद इस्कॉन में भविष्य की दीक्षा प्रणाली जैसे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण विषय को संदिग्ध, अस्पष्ट एवं अनिश्चित अवस्था में नहीं छोड़ सकते थे। वे इस विषय को किसी के वाद — विवाद या किसी के मन की कल्पना पर नहीं छोड़ सकते थे। ऐसा करना उनके स्वभाव के विल्कुल विरुद्ध था। इसके अतिरिक्त हम यदि इतिहास में देखें कि श्रील प्रभुपाद के अपने ही गुरु श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद के मठ को क्या हुआ ? श्रील प्रभुपाद बार — बार इसकी ओर इशारा करते और बतलते थे कि इनके गुरु महाराज के मठ का नाश एक अवैध और अप्रमाणिक गुरु प्रणाली को स्थापित करने के कारण हुआ। इन सब बातों को ध्यान में रखकर अब हम शुरूआत में ऐसे तथ्यों को देखेंगे जो सर्वसम्मत हैं :

६ जुलाई १९७७ को अपना शरिर छोड़ने से पूर्व श्रील प्रभुपाद ने एक दीक्षा प्रणाली की रचना की, जिसमें उन्होंने 'आचार्य के प्रतिनिधियों' का प्रयोग किया था। उन्होंने आदेश दिया था कि इस 'ऑफिशिएटिंग आचार्य (आचार्य के प्रतिनिधि) प्रणाली को तुरन्त स्थापित किया जाये और 'हेंसफॉर्वर्ड' शब्द का प्रयोग करते हुए उन्होंने कहा कि यह प्रणाली इस समय से कार्यान्वित होगी। (परिशिष्ट में ६ जुलाई का पत्र पढें) इस प्रबन्ध संबंधित निर्देशिका (६ जुलाई के पत्र) को इस्कॉन के सारे जी. बी. सी. और टेंपल प्रेसिडेंट्स को भेजा गया था। इस पत्र में यह आदेश था कि अब से नए शिष्यों को नामकरण, जपमाला और गायत्री मन्त्र आदि इन ग्यारह प्रतिनिधियों द्वारा दिए जाएँगे। ये ग्यारह प्रतिनिधि श्रील प्रभुपाद के प्रतिनिधि के रूप में उनकी ओर से कार्य करेंगे और जो नए शिष्य बनेंगे या दीक्षा लेंगे वे श्रील प्रभुपाद के शिष्य होंगे। इस तरह श्रील प्रभुपाद ने उनकी ओर से दीक्षा ग्रहण करने का पूर्ण अधिकार इन ग्यारह व्यक्तियों को दिया था। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया था कि अब से इस मामले में उनसे कोई सम्मति न ली जाए। (इस प्रतिनिधियों के कर्तव्यों की ज्यादा जानकारी के लिए पढ़ें शीर्षक 'ऋत्तिक क्या है ?' पृष्ठ ८३)

श्रील प्रभुपाद के देह त्यागने के तुरन्त बाद ही जी. बी. सी. ने इस प्रणाली को स्थगित कर दिया। सन १९८३ के गौर पूर्णिमा तक इन ग्यारह प्रतिनिधियों ने 'जोनल आचार्य दीक्षा गुरु' की पदवी धारण कर ली और वे स्वतंत्र होकर अपनी ओर से दीक्षा देने लगे। इसे उन्होंने श्रील प्रभुपाद का तथाकथित आदेश बताते हुए कहा कि केवल

वे ग्यारह लोग ही श्रील प्रभुपाद के बाद दीक्षा देने का एकाधिकार रखते थे। कुछ सालों बाद इस 'जोनल आचार्य प्रणाली को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिसके कारण उसे बदलना पड़ा। 'जोनल आचार्य' प्रणाली को बदलकर श्रील प्रभुपाद की मूल प्रणाली की पुनःस्थापना करने के बजाय उन्होंने दर्जनों नए गुरुओं को शामिल कर लिया। इसके साथ ही उन्होंने एक ऐसी विस्तृत व्यवस्था की रचना की जिसमें पथभ्रष्ट और पतित गुरुओं से जूझने के लिए अनेक प्रकार के नियमों और कानूनों का उल्लेख था। अपनी इस नई व्यवस्था का समर्थन करने के लिए अब उन्होंने कहा कि श्रील प्रभुपाद द्वारा गुरु बनने के लिए दिया गया तथाकथित आदेश केवल ग्यारह व्यक्तियों के लिए ही नहीं था अपितु हर भक्त के लिए था जो भी दृढ़ता से नियमों का पालन कर रहा हो और जिसे जी.बी.सी. से दो—तिराह (2/3) मत या वोट प्राप्त हो।

उपर्युक्त वर्णन कोई राजनीतिक मत नहीं वरन ऐतिहासिक तथ्य है जो जी.बी.सी. सहित सर्वसम्मत है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है ६ जुलाई १९७७ का पत्र सारे जी.बी.सी और टेंपल प्रेसिडेंट्स को भेजा गया था। आज तक यह आदेश इस्कॉन में दीक्षा के संबंधित एकमात्र हस्तारक्षरयुक्त आदेश है। ६ जुलाई के आदेश पर टिप्पणी करते हुए हाल ही में जयअद्वैत स्वामी ने कहा :

‘इस पत्र की प्रामाणिकता पर किसी प्रकार का प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता, ... यह पत्र बहुत ही स्पष्ट रूप से ऋत्त्विक गुरु प्रणाली को स्थापित करता है।’

(जयअद्वैत स्वामी 'व्हेअर द ऋत्त्विक पीपल आर रोग' १९६६)

यह एक बहुत ही स्पष्ट आदेश है लेकिन इसको समझने में असमंजस्य का कारण है दो अवैध संशोधन जो बाद में इस आदेश पर थोपे गये :

संशोधन (अ) : श्रील प्रभुपाद द्वारा इन प्रतिनिधियों या ऋत्त्विक की नियुक्ति केवल तत्कालीन थी और श्रील प्रभुपाद के देह त्यागने पर इसका अंत होना था।

संशोधन (ब) : अपने प्रतिनिधित्व या ऋत्त्विक का दायित्व त्याग कर ये ऋत्त्विक अपने आप दीक्षा गुरु बन जाएँगे। दीक्षा देकर वे लोगों को अपना शिष्य बनाएँगे, श्रील प्रभुपाद का नहीं।

१९८७ में क्षेत्रिय आचार्य प्रणाली में जब संशोधन हुए, तब इन दो संशोधनों को बरकरार रखा गया। मजे की बात तो यह है कि ये दोनों संशोधन ही पुरानी प्रणाली का साहारा थे। हम उपर्युक्त (अ) एवं (ब) को अवैध संशोधन कहते हैं क्योंकि ये दोनों कथन न तो ६ जुलाई के पत्र में या इसके उपरान्त श्रील प्रभुपाद द्वारा जारी अन्य किसी दस्तावेज में पाये जाते हैं।

जी. बी. सी. का लेख जी. आई. आई. पूर्ण रूप से इन अवैध संशोधनों का समर्थन करता है :

“जब श्रील प्रभुपाद से पूछा गया कि आपके तिरोभाव उपरान्त दीक्षा कौन देगा, तो उन्होंने संकेत किया कि वे अपने कुछ शिष्यों को 'इंगित करेंगे' और उन्हें 'आदेश' देंगे। पह शिष्य श्रील प्रभुपाद के जीवनकाल में श्रील प्रभुपाद की ओर से एवं उसके उपरान्त एक 'सामान्य गुरु' की तरह अपनी ओर से दीक्षा देंगे। तब उनके शिष्य श्रील प्रभुपाद के परम शिष्य कहलाएँगे।” (जी. आई. आई. पृष्ठ १४)

बीते कुछ बरसों में ऐसे भक्तों की संस्था बढ़ने लगी है जो इन उपर्युक्त मूल संशोधनों पर प्रश्न उठाने लगे हैं। ज्यादातर भक्तों के लिए यह हमेशा संदेहास्पद ही रहे हैं। अतः इस्कॉन के भीतर और बाहर एक किस्म का संशय एवं संदेह फैल गया है। आजकल कई पुस्तकें, लेख, ई-मेल एवं इंटरनेट वेब साइट इस्कॉन और उसके तथाकथित पथभ्रष्ट गुरु प्रणाली पर रोजमर्रा की जानकारी उपलब्ध कराते हैं। जो भी व्यक्ति श्रील प्रभुपाद के आंदोलन को हृदय से चाहता है वो ऐसे किसी भी लेख को, जो इस समस्या का समाधान लाने में सहायता करता है, उपयुक्त ही मानेगा।

श्रील प्रभुपाद ही इस्कॉन के समस्त सदस्यों के परम अधिपति हैं। वस्तुतः हरके व्यक्ति इस बात का समर्थन करता है। इस विषय पर दिये गये उनके हर आदेश का हमें पालन करना ही होगा। यह हम सबका कर्तव्य है।

६ जुलाई का आदेश ही केवल एक ऐसा लिखित अधिकारिक कथन है जो कि संस्था के संपूर्ण वरिष्ठ भक्तों को भविष्य की दीक्षा प्रणाली के विषय पर भेजा गया था। इस बात का भी समस्त सदस्य समर्थन करते हैं।

जी. आई. आई में ६ जुलाई के पत्र के अस्तित्व को दर्शाया ही नहीं गया है। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है, क्योंकि यह पत्र ही एकमात्र स्थान है जहाँ प्रथम ग्यारह 'आचार्यों' का नाम पाया जाता है। यह भूल आश्चर्यजनक है, विशेषतः जब जी. आई. आई संपूर्ण गुरु प्रणाली विषय पर 'अंतिम सिद्धांत' देने का दावा करती है।

अब हम जरा गौर से ६ जुलाई के आदेश को देखेंगे कि क्या उसमें उपर्युक्त अवैधिक संशोधनों (अ) एवं (ब) का समर्थन मिलता है :

आदेश प्रधान में :

जैसा पहले बतलाया गया था, ६ जुलाई के पत्रानुसार ऋत्त्विक प्रणाली 'हेन्सफॉर्वर्ड' लागू की जानी चाहिये थी। श्रील प्रभुपाद के द्वारा पूर्व प्रचलन में एवं अंग्रेजी भाषानुसार इस विशिष्ट शब्द 'हेन्सफॉर्वर्ड' का एक ही अभिप्राय है — 'इस समय से'। शब्दकोश में हर शब्द के कई मतलब हो सकते हैं, परन्तु इस शब्द का एक ही मतलब है। इसलिये अस्पष्टता का कारण ही नहीं बनता।

फेलियो के अनुसार बाकी ८६ बार जहाँ श्रील प्रभुपाद ने 'हेन्सफॉर्वर्ड' शब्द का प्रयोग किया है, किसी ने भी आपत्ति नहीं उठायी कि इस शब्द का 'इस समय से' के अलावा कोई और भी अभिप्राय हो सकता है। 'इस समय से' का मतलब यह नहीं लगा सकते कि 'इस समय से जब तक मैं चला न जाऊँ। इसका सीधा मतलब होता है 'इस पत्र में एक बार भी निर्दिष्ट नहीं है कि यह प्रणाली श्रील प्रभुपाद के तिरोभाव उपरान्त रूक जानी चाहिये। और न ही कि यह प्रणाली श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति में ही लागू होगी। प्रायः एक तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि समस्त ऋत्त्विक प्रणाली केवल एक शब्द 'हेन्सफॉर्वर्ड' पर ही निर्भर है। यह अप्रमाणिक तर्क है क्योंकि अगर हम इस शब्द को पत्र में से निकाल भी दें, तो भी कुछ बदला नहीं। श्रील प्रभुपाद ने एक प्रणाली अपने तिरोभाव से ४ माह पूर्व स्थापित की थी। इसके उपरान्त उन्होंने इस प्रणाली को रोकने संबंधी कोई निर्देश नहीं दिया। ऐसे किसी विपरीत

आदेश के अभाव में इसपत्र को ही श्रील प्रभुपाद का दीक्षा प्रणाली विषय पर अंतिम आदेश मानना होगा और इसलिए इसको वर्तमान में भी पालन करना होगा।

अन्य अनुकूल कथन :

६ जुलाई के पञ्चोपरांत के ही कुछ दिनों में श्रील प्रभुपाद एवं उनके सचिव के कई ऐसे कथन थे जो कि यह स्पष्ट दर्शाते हैं कि ऋत्त्विक प्रणाली बिना अवरोध के जारी रहनी थी।

‘ भविष्य में लागू होने वाली दीक्षा प्रणाली ‘ (११ जुलाई)

‘ ऋत्त्विक वनते रहो एवं मेरे आदेश पर कार्य करो’ (१३ जुलाई)

‘ ऋत्त्विक वनते रहो एवं मेरी आरि से कार्य करो’ (३१ जुलाई)

इन दस्तावेजों में ‘ हेन्सफॉर्वर्ड ‘ शब्द के साथ ‘ भविष्य में, वनते रहो ‘ जैसे शब्दों का प्रयोग यह दर्शाता है कि ऋत्त्विक प्रणाली स्थायी रहनी थी।

श्रील प्रभुपाद दूसरा ऐसा कोई कथन नहीं है जो बात का अभास भी करता हो कि यह ऋत्त्विक प्रणाली उनके देह त्यागने के बाद रोक दी जानी चाहिए थी।

तदनंतर दिए गए आदेश :

ऋत्त्विक प्रणाली के स्थापित होने और उसके कार्यान्वित होने के बाद श्रील प्रभुपाद ने कभी भी इस प्रणाली को बंद करने का आदेश नहीं दिया था। उन्होंने यह भी नहीं कहा कि मेरे देह त्यागने के पश्चात् इस प्रणाली को बंद कर दिया जाए। इसके विपरीत शायद श्रील प्रभुपाद को उस बात का आभास था कि ऐसा कुछ हो सकता है इसलिए उन्होंने अपनी अंतिम वसीयत की शुरुआत में लिखा था कि इस्कॉन की वर्तमान प्रबन्धन प्रणाली (मैनेजमेंट सिस्टम) को इसी तरह जारी रखा जाए और इसमें कोई बदलाव ना हो। अपनी भोतिर देह को त्यागने

के सिर्फ ६ दिन पूर्व श्रील प्रभुपाद ने अपने कोडिसिल (वसीयत में संशोधन) में भी इस तथ्य को बदला नहीं। यदि श्रील प्रभुपाद के मन में यह विचार था कि ऋत्त्विक प्रणाली को बन्द कर दिया जाए तो उनके लिए यह सही अवसर था। (कृपया परिशिष्ट देखें) प्रतिनिधियों (ऋत्त्विक) का उपयोग कर दीक्षितों को नाम इत्यादि देना यह किस प्रकार प्रबन्धन प्रणाली (मैनेजमेंट सिस्टम) ही है इसको हम निम्नलिखित वर्णन से समझ सकते हैं।

सन १९७५ में जी. सी. बी. ने एक प्रस्ताव पारित किया था : ‘प्रबंधन संबंधी सारे मामले में केवल जी. बी. सी. ही उत्तरदायी होगी।’ निम्नलिखित उस वर्ष के प्रबंधन संबंधित कुछ विषय हैं जिनको जी. बी. सी. ने अपने हाथ में लिया था –

‘यदि किसी को हरीनाम दीक्षा लेनी है तो उसे कम से कम ६ माह तक पूर्णकालिक सदस्य होना चाहिए। ब्राह्मण दीक्षा लेने के लिए हरीनाम दीक्षा के बाद कम से कम एक साल का समय होना चाहिए’।

(नियम नं. ६. २५मार्च, १९७५)

‘संन्यास दीक्षा की विधि’। (नियम नं. २. २७मार्च, १९७५)

यह प्रस्ताव स्वयं श्रील प्रभुपाद द्वारा अनुमोदित किया गया था। यह हमें बदलाता है कि दीक्षा की विधि भी प्रबंधन प्रणाली का ही एक अंग है। यदि संपूर्ण दीक्षा विधि को श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रबंधन प्रणाली का ही एक अंग माना जाता है तब दीक्षा विधि के एक अंग 'आध्यात्मिक नामकरण प्रतिनिधियों (ऋत्त्विक) द्वारा करवाना' यह भी प्रबंधन प्रणाली के अंतर्गत ही आता है। इसे भी एक प्रबंधन प्रणाली कहकर संबोधित किया जाना चाहिए।

फलस्वरूप ऋत्त्विक द्वारा दीक्षा देने की प्रणाली को बदलना श्रील प्रभुपाद की अंतिम वसीयत का उल्लंघन है।

एक और आदेश जो ऋत्त्विक प्रणाली को जारी रखने का सूचक है श्रील प्रभुपाद ने अपनी वसीयत में लिखा था। इस आदेश के अनुसार भारत की स्थायी जायदादों (प्रोपर्टी) के शासकीय अध्यक्ष (एक्जीक्यूटिव डाइरेक्टर) केवल उनके दीक्षित शिष्यों में से ही चुने सकते हैं।

'यदि उत्तराधिकारी अध्यक्ष (सक्सेसर डाइरेक्टर) या अध्यक्षों को नियुक्त करना हो तो उसे अन्य अध्यक्षगण मिलकर नियुक्त कर सकते हैं लेकिन जो नया अध्यक्ष होगा वह मेरा दीक्षित शिष्य होना चाहिए।'

(श्रील प्रभुपाद की वसीयत, ४ जून, १९७७)

यह तब ही हो सकता है जब श्रील प्रभुपाद के तिरोभाव के बाद ऋत्त्विक प्रणाली को बनाये रखा जाए। यदि ऐसा न हुआ तो अध्यक्ष बनने लायक लोग खत्म हो जाएँगे।

इसके अतिरिक्त ६ जुलाई के बाद जब भी श्रील प्रभुपाद ने दीक्षा की बात की तो उन्होंने ऋत्त्विक गुरु प्रणाली के अनुरूप ही की। उन्होंने कभी ऐसा संकेत नहीं दिया कि ऋत्त्विक गुरु प्रणाली को उनके देह त्यागने

के बाद बंद कर दिया जाए या कुछ भक्त दीक्षा गुरु का उत्तरदायित्व लेने के लिए तैयार हो जाएँ। जहाँ तक सीधे प्रमाणों का सवाल है वे जी.बी.सी.के उपरोक्त संशोधनों (अ) और (ब) का बिल्कुल समर्थन नहीं करते। किन्तु यही संशोधन आज इस्कॉन की वर्तमान गुरु प्रणाली का आधार है। यदी इन संशोधनों को गलत सिद्ध किया जाए तो जी.बी.सी.के को इस विषय पर गंभीरता से पुनर्विचार करना पड़ेगा।

उपर्युक्त वर्णन इस विषय को पूर्णरूपेण स्पष्ट करता ही। पहलेपहल श्रील प्रभुपाद का आदेश फिर इसके अनुरूप एवं अनुकूल आदेश और तदनंतर दिए गए आदेश ये सभी केवल ऋत्त्विक प्रणाली को जारी रखने का समर्थन करते हैं। यह सर्वसम्मत है कि श्री प्रभुपाद ने अपने देह त्यागने के पश्चात ऋत्त्विक प्रणाली को बंद करने के लिए किसी प्रकार का आदेश नहीं दिया था। यह भी सर्वसम्मत है की श्रील प्रभुपाद ने ऋत्त्विक प्रणाली को ६ जुलाई के बाद से कार्यान्वित होने के लिए स्थापित किया था। अतः यह ऐसी स्थिति है जब आचार्य ने —

(क) ऋत्त्विक प्रणाली को लागू करने का स्पष्ट आदेश दिया है।

(ब) देह त्यागने पर ऋत्त्विक प्रणाली को बंद करने का आदेश नहीं दिया।

परिणामस्वरूप यदि कोई इस आदेश का पालन करना बंद करता है तो उसके इस कार्य का आधार पूछा जा सकता है। यदि श्रील प्रभुपाद ने इस विषय में कोई आदेश दिया था तो वह था ऋत्त्विक प्रणाली का पालन करने के लिए। उन्होंने इस प्रणाली को स्थगित करने के लिए कभी नहीं कहा। न ही उन्होंने कभी कहा कि इसका पालन केवल उनकी सशरीर उपस्थिति में ही हो। प्रमाण

दिखलाने का भार अपने आप ही ऊन लोगों पर पड़ता है जो अपने आचार्य द्वारा स्थापित इस प्रणाली को स्थगित करना चाहते हो। कोई भी मनमाने ढंग से गुरु के आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकता :

‘———— विधी यह है कि तुम गुरु के आदेश को बदल कर नहीं सकते’।
(श्रील प्रभुपाद चैतन्य चरितामृत प्रवचन, २१/१२/७३, लॉस एंजिल्स)

एक शिष्य को अपने गुरु के सिधे आदेश का पालन करते रहने के लिए गवाही नहीं देनी पड़ती। यही शिष्य होने का अर्थ है।

‘जब कोई शिष्य बनता है तो वह अपने गुरु को आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकता।’
(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, ११/२/७५, मेक्सिको)

चूँकि श्रील प्रभुपाद के देह त्यागने पर ऋत्तिक प्रणाली को बन्द करने के संबंध में कोई सीधा या स्पष्ट प्रमाण नहीं है इसलिए उपर्युक्त संशोधनों को सिद्ध करने के लिए अप्रत्यक्ष प्रमाण ही देने पड़ेंगे। अप्रत्यक्ष प्रमाणों का प्रश्न तब उठता है जब किसी आदेश को अक्षरशः लेना विशेष परिस्थितियों में ठीक नहीं बैठता। तब ऐसी परिस्थितियों को अधार बनाकर आदेश के अक्षरशः अर्थ को बदला जा सकता है। आइए अब हम ६ जुलाई के आदेश के प्रसंग और उससे घिरी परिस्थितियों का अध्ययन करे और देखे कि क्या उस समय ऐसी परिस्थितियाँ थी ? यह भी देखेंगे कि क्या जी.वी.सी के संशोधनों (अ) एवं (ब) को सिद्ध करने के प्रमाण मिलते हैं।

अंतिम आदेश के स्वभाव और प्रसंग से संबंधित आपत्तियां

१. “यह पत्र स्पष्ट दर्शाता है कि ऋत्विक् प्रणाली सिर्फ श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति में ही लागू होनी थी।”

पत्र में ऐसा कोई भी कथन नहीं है जो यह दर्शाता हो की यह आदेश श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति में ही लागू होना था। वस्तुतः जो जानकारी यहाँ दी गई है वह तो श्रील प्रभुपाद के तिरोभाव के बाद ऋत्विक् दीक्षा प्रणाली को बरकरार रखने का समर्थन करती है। ६ जुलाई के पत्र में यह ३ बार कहा गया है कि दीक्षा लेने वाले श्रील प्रभुपाद के शिष्य होंगे। वर्तमान गुरु प्रणाली को प्रमाणिक सिद्ध करने के लिये जी. वी. सी. बारम्बार यह तर्क देती है कि श्रील प्रभुपाद के अनुसार यह एक अभेद्य कानून है कि गुरु की उपस्थिति में दूसरा कोई दीक्षा नहीं दे सकता। अतः इस बात पर जोर देने की भविष्य के सारे दीक्षित शिष्य श्रील प्रभुपाद के ही शिष्य होंगे, दर्शाता है कि यह आदेश तभी लागू होना था जब इन शिष्यों के प्रभुत्व पर सवाल उठ सकता था – यानी कि श्रील प्रभुपाद के तिरोभाव पर।

अंतिम कुछ वर्षों में श्रील प्रभुपाद अपने कुछ प्रतिनिधियों से मालाओं पर जाप, अग्नि होम, गायत्री मंत्र आदि करवा रहे थे। किसी ने भी उन शिष्यों के प्रभुत्व पर उँगली नहीं उठायी थी। ६ जुलाई के पत्र की शुरूआत में यह बहुत ही जोर देकर कहा गया है कि श्रील प्रभुपाद द्वारा यहाँ नियुक्त भक्त उनके ‘प्रतिनिधि’ होंगे।

इस पत्र से सिर्फ एक ही नवीन पद्धति उभर कर आयी – इन प्रतिनिधियों की औपचारिक रूप से नियुक्ति। इससे क्या यह संशय हो सकता है कि यह उनके पूर्ण दीक्षा गुरु बनने का स्पष्ट आदेश था ? जब तक श्रील प्रभुपाद सशरीर उपस्थित थे तब तक तो वह खुद यह देख सकते थे कि कोई और उनके शिष्यों पर प्रभुत्व न जमाए। अतः श्रील प्रभुपाद जब इस पत्र में शिष्यों के अपने प्रभुत्व पर जोर दे रहे हैं तो यह स्वतः ही दर्शाता है की यह प्रणाली उनके पदार्पण के उपरान्त के लिए भी थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह दृष्टि स्थिति इस पत्र में ३ बार ठोक – ठोक कर कही है – एक ऐसा पत्र कि स्वयं छोटा और संक्षिप्त है।

‘एक चीज पर जब तीन बार जोर दिया जाये, समझ लो की वही अंतिम है।’

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, २१/११/६८, लॉस एंजिल्स में)

६ जुलाई के पत्र में एक कथन है कि नये दीक्षित शिष्यों का नाम ‘श्रील प्रभुपाद को’ भेजना होगा। क्या इसका यह मतलब है कि यह प्रणाली श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति में लागू होनी थी ? कुछ भक्तों ने तर्क दिया है कि क्योंकि अब हम श्रील प्रभुपाद को यह नाम भेजने में असमर्थ हैं, अतः ऋत्विक् प्रणाली अवैधानिक है।

उत्तर में, श्रील प्रभुपाद को नाम भेजने का कारण था कि वे नाम उनकी ‘इनिशिएटेड डिसाइपल्स’ (दीक्षित शिष्य) किताब में संकलित हो जाएँ। ७ जुलाई के वार्तालाप (कृपया परिशिष्ट देखें)से हमें यह जानकारी मिलती

है। श्रील प्रभुपाद के सचिव इस पुस्तक में नाम लिख रहे थे, खेद श्रील प्रभुपाद नहीं। इसका एक प्रमाण हमें एक अन्य पत्र से

उजागर होता है। इसमें तमाल कृष्ण गोस्वामी हंसदूता को उनके ऋत्त्विक कर्तव्य बता रहे हैं।

‘————— तुम्हें उनके नाम श्रील प्रभुपाद की ‘इनिशिएटेड डिसाइपल्स’ (दीक्षित शिष्य) पुस्तिका में सम्मिलित करने ले लिए भेजने होंगे।’

(तमाल कृष्ण गोस्वामी द्वारा हंसदूता को पत्र, १०/७/७७)

यहाँ स्वयं श्रील प्रभुपाद को नाम भेजने की नहीं कही गयी है। यह प्रणाली श्रील प्रभुपाद के सशरीर पदार्पण के उपरान्त भी सरलता से चल सकती है। अन्तिम आदेश में कही भी ऐसा कथन नहीं आता कि ‘इनिशिएटेड डिसाइपल्स’ (दीक्षित शिष्य) किताब के श्रील प्रभुपाद से अलग होने पर दीक्षा देना ही रोक देना होगा।

दूसरा उत्तर यह है कि ने दीक्षित शिष्यों का नाम श्रील प्रभुपाद को भेजने का कार्य दीक्षा के बाद का कार्य है। शिष्य का नाम दीक्षा उपरान्त ही भेजा जा सकता है। दीक्षा उपरान्त प्रणाली के औपचारिकतावश, दीक्षा पूर्व प्रणाली या स्वयं दीक्षा प्रणाली में न तो परिवर्तन किया जा सकता है और न ही रोका सकता। (क्योंकि दीक्षा विधी पूर्ण होने के पूर्व ही ऋत्त्विक का कार्य समाप्त हो चुका होता है।) जब तक श्रील प्रभुपाद को दीक्षा उपरान्त नाम भेजने का प्रश्न उठेगा, तब तक दीक्षा विधी पूर्ण हो चुकी होती है। अतः नाम भेजने या न भेजने से दीक्षा प्रणाली पर कोई फर्क नहीं पड़ता।

श्रील प्रभुपाद को नाम भेजना, अगर दीक्षा प्रणाली का महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता तो श्रील प्रभुपाद के पदार्पण के पूर्व ही यह प्रणाली किसी या तो बंद हो गई होती या फिर हर समय बंद होने का डर रहता। ज्यादातर भक्त जानते थे कि श्रील प्रभुपाद किसी भी वक्त अपना शरीर छोड़ने वाले हैं। अतः यह आदेश जारी होने के उपरान्त प्रथम दिन से ही यह डर रहता कि इन नामों का भेजने के लिये कोई नहीं रहेगा। दूसरे शब्दों में, उदाहरण के लिये एक शिष्य द्वारा इस प्रणाली से दीक्षा लेने के उपरान्त अगर एक दिन बाद ही श्रील प्रभुपाद इस धरती से चले जाते उपर्युक्त तर्क अनुसार यह शिष्य दीक्षित नहीं होता क्योंकि पोस्ट समय से नहीं पहुँच सकी। हमें श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में कही यह उपदेश नहीं मिलता कि जन्म—जन्मांतर से मिल रही दिव्य दीक्षा, डाकघर की मर्जी अनुसार रूक सकती है। स्पष्ट तो यह है कि आज भी श्रील प्रभुपाद की ‘इनिशिएटेड डिसाइपल्स’ (दीक्षित शिष्य) किताब में नव दीक्षित शिष्यों के नाम सम्मिलित किए जा सकते हैं। फिर इस पुस्तिका को समयानुसार श्रील प्रभुपाद को अर्पित किया जा सकता है।

२. “ यह पत्र निश्चित रूप से यह नहीं कहता कि ‘यह प्रणाली के पदार्पण के बाद जारी रहनी चाहिए’। अतः इस प्रणाली को श्रील प्रभुपाद के तिरोभाव उपरान्त बंद करना उचित था।’

कृपया निम्नलिखित तर्कों पर विचार करें —

(क) ६ जुलाई का पत्र यह नहीं कहता कि ‘ऋत्त्विक प्रणाली को श्रील प्रभुपाद के तिरोभाव उपरान्त खत्म कर देना चाहिए’। इसके बावजूद प्रभुपाद के देह त्यागने के तुरन्त बाद इसको खत्म कर दिया गया।

(ख) पत्र यह भी नहीं कहता कि ‘ऋत्त्विक प्रणाली को श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति के दौरान चलाया जाना चाहिए’। फिर भी इसे श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति में चलाया गया।

(ग) पत्र यह भी नहीं कहता कि ‘ऋत्त्विक प्रणाली को केवल श्रील प्रभुपाद के देह त्यागने तक ही चलाना जाना चाहिए’। फिर भी इसे

उनके देह त्यागने तक ही चलाया गया।

(घ) पत्र यह भी नहीं कहता कि 'ऋत्त्विक प्रणाली बंद होनी चाहिए'। फिर भी इसे बंद कर दिया गया।

सारांश में, जी. बी. सी. निम्नलिखित बातों पर अडे हुए हैं —

- ऋत्त्विक प्रणाली बंद होनी चाहिए।
- ऋत्त्विक प्रणाली को श्रील प्रभुपाद के तिरोभाव उपरान्त बंद होना चाहिए।

इन दो बातों में कोई भी बात ६ जुलाई के पत्र में नहीं पाई जाती, न ही किसी अन्य हस्ताक्षरयुक्त आदेश में ये बातें पाई जाती हैं। इसके बावजूद ये दोनों संशोधन 'जोनल आचार्य' (क्षेत्रीय आचार्य) प्रणाली और वर्तमान में चलित 'मल्टिपल आचार्य सक्सेसर सिस्टम' (बहुल आचार्य परम्परा प्रणाली) का आधार हैं। अब से हम 'मल्टिपल आचार्य सक्सेसर सिस्टम' को म. आ. स. सि. से संबोधित करेंगे। (यहाँ आचार्य शब्द का प्रयोग हम दीक्षा गुरु के समान करेंगे।)

यह अनुचित तर्क है कि क्योंकि पत्र में उसके चलने की अवधि का विशेष रूप से उल्लेख नहीं है अतः उचित होगा कि देह त्यागने के तुरन्त बाद ही उसे बंद कर देना चाहिए। इसी तर्क का प्रयोग कर यह भी कहा जा सकता है कि यह पत्र यह भी नहीं कहता कि इसका पालन ६ जुलाई के बाद किया जाए अतः इस पत्र का पालन कदाचित् नहीं होगा चाहिए था। हम यह भी मान सकते हैं कि 'हेन्सफॉर्वर्ड' अर्थात् 'इस समय से' का तात्पर्य केवल उस दिन के अन्त तक के लिए था क्योंकि पत्र यह भी नहीं कहता कि उसका पालन १० जुलाई तक भी हो। अतः इसको उसी दिन के अंत में ही पालन करना बंद कर देना चाहिए था। यह माग की जाती है कि ६ जुलाई के पत्र को केवल पूर्वघोषित अवधि में ही चलाना जाना चाहिए। लेकिन असल में हुआ यह कि इस पत्र को १२६ दिनों तक अर्थात् चार महिनों तक चलने दिया गया। इन १२६ दिन या चार माह की अवधि का उल्लेख भी इस पत्र में नहीं है लेकिन सभी लोग इस पत्र के चार महीने तक ही चलने से संतुष्ट हैं।

यह 'हेन्सफॉर्वर्ड' का अर्थ 'अब से अनिश्चित काल के लिए' ना लिया जाए तो ऋत्त्विक प्रणाली को ६ जुलाई के बाद किसी भी समय बंद किया जा सकता था। इसको बंद करने के लिए केवल श्रील प्रभुपाद के देह त्यागने का दिन ही क्यों चुना गया?

श्रील प्रभुपाद ने ८६ बार इस 'हेन्सफॉर्वर्ड' का प्रयोग किया। उनके इस शब्द के प्रयोग या अंग्रेजी के इतिहास में ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जहाँ इस शब्द का निम्नलिखित मतलब हो :

‘ जिस व्यक्ति ने यह आदेश दिया है उसके जीवनकाल तक ही या उसकी मृत्यु ही ‘

फिर भी वर्तमान सोच के अनुसार ६ जुलाई के पत्र से इस शब्द का मतलब यही निकाला गया है। जबकि पत्र केवल यही कहता है कि ' इस समय से ' इस प्रणाली को लागू किया जाए। फिर इसको रोक क्यों दिया गया ?

३. " कुछ आदेशों का पालन हम श्रील प्रभुपाद के प्रदार्पण के प्रभुपाद के बाद नहीं कर सकते, अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐसे आदेश केवल उनके जीवनकाल तक के लिए ही थे। उदाहरणार्थ किसी को नियुक्त कर उससे कहा जा सकता है कि 'इस समय से' (हेन्सफॉर्ड) तुम श्रील प्रभुपाद को रोज मालिश दो। शायद हो सकता है ऋत्तिक बनने का आदेश कुछ इसी तरह का हो ?"

यदि किसी आदेश का पालन करना असंभव हो जाए तो उस आदेश को पालन करने का प्रश्न ही नहीं उठता। उदाहरणार्थ श्रील प्रभुपाद को उनके पदार्पण उपरान्त मालिश देने का प्रश्न ही नहीं उठता। एक शिष्य का यह कर्तव्य है कि वह तब तक किसी आदेश का पालन करता रहे जब तक उस आदेश का पालन असंभव ना हो जाए या फिर गुरु अपने आदेश को ही बदल न दे। अब प्रश्न यह उठता है कि ऋत्तिक प्रणाली को उसके रचयिता श्रील प्रभुपाद की अनुपस्थिति में भी चलाया जा सकता है?

वास्तव में ऋत्तिक प्रणाली को इस तरह बनाया गया था कि उसमें श्रील प्रभुपाद की किसी शारीरिक योगदान की जरूरत न थी। यदि ऋत्तिक प्रणाली को श्रील प्रभुपाद के बाद भी चलने दिया जाता तो भी इस प्रणाली के कार्यक्रम में कोई फर्क नहीं आता। ६ जुलाई के बाद ऋत्तिक प्रणाली इस तरह चल रही थी मानो श्रील प्रभुपाद इस संसार से चले गए हों। परिणामस्वरूप हम यह नहीं कह सकते कि श्रील प्रभुपाद के पदार्पण के बाद ऋत्तिक प्रणाली को कार्यान्वित नहीं किया जा सकता या ऋत्तिक प्रणाली सफलता से कार्य नहीं कर सकता क्योंकि श्रील प्रभुपाद की शारीरिक अनुपस्थिति इस ऋत्तिक प्रणाली के क्रियाशील रहने में कोई बाधा नहीं डालती। इस ऋत्तिक प्रणाली को श्रील प्रभुपाद के देह त्यागने के बाद कार्य करने के लिए ही बनाया गया था अतः ऐसी स्थिति आने से यह प्रणाली अपंग नहीं हो जाती।

४. " यह आदेश केवल एक पत्र द्वारा जारी किया गया था, किताबों से नहीं। अतः हम इसका अप्रत्यक्ष अर्थ निकाल सकते हैं "

यहाँ लैटर्स वर्सस बुक्स (पत्र बनाम पुस्तक) तर्क लागू नहीं होता क्योंकि यह एक साधारण पत्र नहीं है। साधारणतया श्रील प्रभुपाद किसी एक शिष्य के विशेष प्रश्न के उत्तर में या किसी को विशेष मार्ग दर्शन देने के

लिए या सुधारने के लिए पत्र लिखते थे; क्योंकि ऐसे पत्र किसी एक भक्त के व्यक्तिगत प्रश्न, अवस्था या पथभ्रष्टता के कारणवश लिखे गये थे, अतः उनका भिन्न – भिन्न भावार्थ निकाला जा सकता है। श्रील प्रभुपाद के पत्रों में पाये गये समस्त उपदेशों को सर्वस्व लागू नहीं किया जा सकता। (उदाहरणतया – एक भक्त को, जिन्हें मिर्च – मसाला भा नहीं रहा था, उन्होंने सलाह दी कि वे सिर्फ नमक और हल्दी से खाना पकाएँ। स्वभावतया इस सलाह को पूरे आंदोलन में लागू नहीं किया जा सकता) परन्तु, दीक्षा प्रणाली से इस अंतिम आदेश का और कोई अर्थ नहीं लगाया जा सकता; क्योंकि यह पत्र किसी एक शिष्य के व्यक्तिगत प्रश्न, अवस्था या गलती सुधारने हेतु नहीं लिखा गया था। ६ जुलाई का पत्र संपूर्ण संस्था की एक प्रबंधन प्रणाली बनाता है जिसे आंदोलन के समस्त अतिवरिष्ठ भक्तों को लिखा गया था।

जब भी श्रील प्रभुपाद कोई महत्वपूर्ण आदेश जारी करते थे और चाहते थे कि कोई उसका गलत अर्थन निकाले तब वे उसे लिखवाते, अनुमोदित करते एवं उसे समस्त अतिवरिष्ठ भक्तों को भेज देते थे। ६ जुलाई का पत्र भी इसी श्रेणी में आता है। उदाहरण के लिये, उन्होंने एक पत्र २२ अप्रैल १९७२ को 'ऑल टेम्पल प्रेसिडेन्ट' (समस्त टेम्पल प्रेसिडेन्ट) को भेजा था-
क्षेत्रीय सचिव का कार्य है अपने क्षेत्र के समस्त मंदिरों का निरीक्षण करना कि वहाँ समस्त आध्यात्मिक नियमों का पालन उचित ढंग से हो रहा है या नहीं। अन्यथा, हर एक मंदिर स्वतंत्र एवं स्वावलम्बी होगा।'

(श्रील प्रभुपाद का पत्र समस्त टेम्पल प्रेसिडेन्ट को, २२/४/७२)

जब भी श्रील प्रभुपाद ने कोई महत्त्वपूर्ण आदेश जारी किया, तो हर बार उन्होंने नई किताब जारी नहीं की। चाहे वह आदेश उनके शारीरिक प्रस्थान के बाद भी जारी रहना था। अतः इस आदेश को जिस रूप में जारी किया गया था, उससे न तो भिन्न भावार्थ निकल सकता है और न ही इसकी प्रामाणिकता घट जाती है।

५. “संभवतः इस आदेश को किसी विशेष अवस्था के कारण जारी किया गया था जो श्रील प्रभुपाद के शारीरिक प्रस्थान उपरान्त लागू नहीं होती।”

अगर ऐसी अवस्था विद्यमान भी होती तो श्रील प्रभुपाद ने उस पत्र में या सलग्न किसी दस्तावेज में उसको प्रकट किया होता। श्रील प्रभुपाद अपने निर्देशों को उचित ढंग से लागू करवाने के लिये सदैव जरूरतानुसार जानकारी देते थे। निश्चित रूप से उनकी कार्य-शैली इस पर निर्भर नहीं थी कि उनके टेंपल प्रेसिडेंट यौगिक सिद्धि प्राप्त हो जो कि अधूरे एवं अपूर्ण आदेश जारी करने पर टेलीपैथी (मानसिक संक्रमण) द्वारा उन्हें समझ ले। उदाहरणतया, अगर श्रील प्रभुपाद चाहते थे कि ऋत्त्विक प्रणाली उनके शारीरिक प्रस्थान उपरान्त रूक जाये तो वह ये १० शब्द ६ जुलाई के पत्र में अवश्य सम्मिलित करते, ‘यह प्रणाली मेरे शारीरिक प्रस्थान उपरान्त रोक दी जानी चाहिये।’ बल्कि पत्र पर एक सरासरी निगाह डालने से ही हमें दिखता है कि वे चाहते थे कि यह प्रणाली हेन्सफॉर्ड ६ (इस समय से) चलती रहे। (कृपया परिशिष्ट देखें)

कई बार यह तर्क भी दिया जाता है कि केवल श्रील प्रभुपाद की बीमारी के कारणवश यह ऋत्त्विक प्रणाली स्थापित की गयी थी।

भक्तगण श्रील प्रभुपाद की बीमारी की स्थिति से भिन्न या अभिन्न हो सकते थे, परन्तु वे एक पत्र को देखकर जिसमें उनकी बीमारी का जिक्र भी न था, कैसे ज्ञात कर सकते थे कि उनकी बीमारी ही इस पत्र को लिखने का एकमात्र कारण है। श्रील प्रभुपाद ने कब ऐसा कहा कि उनके हर आदेश को लागू करते वक्त उनकी वर्तमान ‘मेडिकल रिपोर्ट’ (स्वास्थ्य का विवरण) का निरीक्षण करके आदेश का भावार्थ निकाला जाये। इस पत्र के प्रतिग्राहक यह भी सामान्यतः मान सकते थे कि यह दीक्षा प्रणाली पर एक स्पष्ट आदेश है जो अक्षरक्षः लागू किया जाना चाहिये।

श्रील प्रभुपाद ने पूर्व में ही घोषणा कर दी थी कि वे अपना शरीर छोड़ने हेतु वृन्दावन जा रहे हैं। जिकालज्ञा होने के नाते अत्यन्त सम्भवतः उन्हें मालूम ही होगा कि वे ४ माह में इस धरती से प्रस्थान करने वाले हैं। अपनी अनुपस्थिति में अपने आंदोलन को जारी रखने के लिये वे अन्तिम आदेश दे चुके थे। अपनी अनुपस्थिति में मार्गदर्शन के लिये उन्होंने अपनी वसीयत और बी.बी.टी. (भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट) एवं जी.बी.सी. संबंधित दस्तावेज तैयार कर लिये थे। केवल एक विषय का निबटारा करना रह गया था-उनकी अनुपस्थिति में दीक्षा प्रणाली किस तरह चलेगी। तब तक अनिश्चिता थी कि आगे किस प्रकार कार्य चलेगा। ६ जुलाई के पत्र से सबको स्पष्ट कर दिया गया कि उनकी अनुपस्थिति में दीक्षा विधी किस तरह चलेगी।

सारांश में, कोई एक आदेश को कुछ ऐसे तथ्यों के कारणवश नहीं बदला जा सकता जो आदेश जारी करेंगे जब उन्होंने मालूम था कि कोई इसका ठीक से पालन नहीं कर सकता; क्योंकि उस आदेश के साथ संबंधित तथ्य बताये ही नहीं गये थे। अगर ऋत्त्विक प्रणाली श्रील प्रभुपाद की बीमारी के कारणवश स्थापित की गयी थी तो यह तथ्य वे इस पत्र या संलग्न दस्तावेजों में जरूर जाहिर करते। पूर्व

में हमें कभी भी ऐसी व्याख्या नहीं मिलती जब उन्होंने बिना सोचे-समझे नहीं करते थे। और जब इतने महत्वपूर्ण आदेश की बात आती है तब तो और ज्यादा अचरज होता है कि वे कोई महत्वपूर्ण तथ्य कहना भूल गये हों।

६.” क्या ‘अपॉइंटमेंट टेप’ (नियुक्ति का टेप) में गयी जानकारी यह सिद्ध नहीं करती कि ६ जुलाई का आदेश केवल श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति तक ही था ? “

जी.बी.सी. के संशोधन (अ) और (ब) सिद्ध करने के लिए जी.आई.आई. में एक ही प्रमाण पाया जाता है। यह प्रमाण २८ मई १९७७ के एक वार्तालाप से लिया गया है। इस लेख की धारणा है कि श्रील प्रभुपाद के आदेशों में ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जो इस विषय से संबंधित हो।

‘हालाँकि श्रील प्रभुपाद ने अपने वाक्यों को फिर से नहीं दोहराया फिर भी सब यही समझते थे कि श्रील प्रभुपाद अपेक्षा करते हैं कि उनके शिष्य भविष्य में दीक्षा देंगे।’

चूँकि यह जी.बी.सी. ल एकमात्र प्रमाण है इसलिए २८ मई के वार्तालाप को लेकर इस लेख में एक विशेष अध्याय बनाया गया है। वास्तव में यह कहना ही काफी होगा कि ६ जुलाई के पत्र में इस २८ मई के वार्तालाप

का कोई उल्लेख ही नहीं है, ना ही श्रील प्रभुपाद ने इस बात पर जोर दिया कि ६ जुलाई के पत्र के साथ वार्तालाप के टेप की प्रतिलिपि भी भेजी जाए। अतएव हम पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं कि इसमें अन्तर ऐसी जानकारी नहीं है जो ६ जुलाई के पत्र के सार को बदले या जिससे ६ जुलाई के पत्र को समझने में अन्तर आए। वास्तव में देखा जाए तो २८ मई के वार्तालाप के टेप को श्रील प्रभुपाद के पदार्पण के कई सालों बाद तक भी प्रकाशित नहीं किया गया था। इस तरह एक और बार हमें एक ब्युत ही स्पष्ट पत्र को बदलने को कहा जा रहा है। और वह भी इस ६ जुलाई का पत्र भेजा गया था। आगे चलकर हम देखेंगे कि इस २८ मई के वार्तालाप में ऐसा कुछ तथ्य नहीं है जो कि इस अंतिम आदेश से भिन्न हो।

सामान्यतः किसी एक विषय पर गुरु द्वारा बाद में दिए गए आदेश पहले दिए गये आदेशों की तुलना में श्रेष्ठ होते हैं। ‘फाइनल ऑर्डर’ श्रील प्रभुपाद का अंतिम आदेश है अतएव इसका पालन करना अनिवार्य है :

“मैं तुम्हें बहुत कुछ कह सकता हूँ, लेकिन जब मैं तुमसे सीधे कुछ कहूँ तो तुम वही करो। यह तुम्हारा कर्तव्य हो जाता है कि तुम वही करो, तुम यह विवाद नहीं कर सकते कि ‘स्वामीजी आपने मुझे पहले इस तरह करने को कहा था’, नहीं, वह तुम्हारा कर्तव्य नहीं, जो मैं तुम्हें अभी कह रहा हूँ तुम वही करो, इसको कहते हैं आज्ञा पालन।”

(श्रील प्रभुपाद श्रीमद्-भागवतम् प्रवचन, १४/४/७७, हैदराबाद)

जैसे कि भगवद्गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को कई तरह की योग इच्छतियों के बारे में बताते हैं, जैसे- पहले ध्यान योग फिर ज्ञान योग इत्यादि लेकिन बाद में भगवान ने अपना अंतिम आदेश दिया :

“हमेशा मेरा चिन्तन करो और मेरे भक्त बनो- इसी को भगवान का अंतिम आदेश मानना चाहिए और इसी का पालन करना चाहिए।”
(चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत, अध्याय ११)

शंकराचार्य का अंतिम आदेश था ‘भज गोविन्दम’ और यह आदेश उनके पहले दिए गए अन्य आदेशों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। यह अंतिम आदेश उनके पहले दिए गए सभी आदेशों को निलंबित करता है। जी.वी.सी. स्वयं इसको तर्क का प्रामाणिक सिद्धान्त मानती है।

“तक—वितर्क में, बाद में कहे गए वाक्यों से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।”
(जी.आई.आई., पृष्ठ २५)

ऐसा संभव नहीं कि हम अंतिम कथन के बदले उससे पहले वाले कथनों को स्वीकारें। अतएव जी.वी.सी. को अपने ही तर्क से ऋत्त्विक प्रणाली ले अपनाना चाहिए।

७. “श्रील प्रभुपाद ने कई बार यह कहा था कि उनके सारे शिष्यों को गुरु बनना चाहिए। यह निश्चित रूप से साबित करता है कि श्रील प्रभुपाद ऋत्त्विक प्रणाली को स्थायी रूप से नहीं चाहते थे।”

श्रील प्रभुपाद ने अपने वाद किसी को दीक्षा गुरु बनने का आदेश नहीं दिया था। और इसके विरोध में अभी तक किसी पमाण प्रस्तुत नहीं किया है। वास्तव में इस्कॉन के कई वरिष्ठ नेता इस बात का समर्थन करते हैं।

“और यह तथ्य है कि श्रील प्रभुपाद ने कभी यह नहीं कहा कि ‘ठीक है यह अगले आचार्य होंगे या ये ग्यारह लोग आचार्य हैं और सारे संसार भर के आंदोलन का गुरु बनने के लिए इन्हें अनुमति है’ उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया।”
(रविन्द्र स्वरूप दास, सॅनडियागो शास्त्रार्थ, १९६०)

श्रील प्रभुपाद ने स्पष्ट कहा है कि एक महाभागवत ही दीक्षा गुरु बन सकता है। (महाभागवत-भगवद् साक्षात्कार की उच्चतम अवस्था) केवल यही नहीं बल्कि उसे अपने गुरु द्वारा निजी आदेश भी प्राप्त होना चाहिए। जो लोग बिना योग्यता के और बिना किसी आदेश के गुरु की पदवी धारण करते थे उनका श्रील प्रभुपाद बहुत जोरदार निन्दन करते थे।

हम यहाँ श्रील प्रभुपाद की प्रस्तकों में पाए जाने वाले एकमात्र श्लोक को प्रस्तुत कर रहे हैं जहाँ दीक्षा शब्द किसी योग्यता के साथ जुड़ा हुआ है।

महाभागवत श्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर नुनम्
सर्वेषम एव लोकनम् असौ पूज्यो यथा हरिः

महाकुलप्रसुतोपि सर्व यज्ञेशु दिक्षितः
सहस्र साखाद्ययि च न गुरुः स्याद अवैष्णवः

‘गुरु को भक्ति की सर्वोत्तम अवस्था पर स्थित होना ही चाहिए। भक्तों को तीन स्तरों में विभाजित किया जा सकता है और गुरु को उच्चतम स्तर के भक्तों में से ही चुना जाना चाहिए।’

(चैतन्य चरितामृत मध्य, २४.३३०, भावार्थ)

‘जब कोई भक्ति के उच्चतम स्तर महाभागवत् को प्राप्त हो जाता है तब उसे गुरु के रूप में स्वीकार करना चाहिए और साक्षात् भगवान हरि के समान उनको पूजना चाहिए। केवल ऐसा व्यक्ति ही गुरु की पदवी धारण करने योग्य है।’

(चैतन्य चरितामृत मध्य, २४.३३०, भावार्थ)

श्रील प्रभुपाद ने विशेष रूप से यह भी कि दीक्षा गुरु बनने के लिए योग्यता ही नहीं बल्कि अपने पूर्व आचार्य का आदेश और अनुमति भी होनी चाहिए :

‘सारांश में तुम यह जाना लो कि वह मुक्तात्मा नहीं है, अतएव वह किसी को कृष्ण भावनामृत में दीक्षा नहीं दे सकता। इसके लिए पूर्व अधिकारियों का विशेष आशीर्वाद होना चाहिए।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र जर्नादन को, २६/४/६८)

‘एक प्रामाणिक गुरु जिन्हें उनके पूर्व गुरु ने अनुमति देकर अधिकृत किया हो एवं जो गुरु परम्परा के अंतर्गत आते हैं ऐसे गुरु से ही दीक्षा लेनी चाहिए। इसी को दीक्षा विधान कहते हैं।’

(श्रीमद्-भागवतम्, ४.८.५४, भावार्थ)

भारतीय व्यक्ति : आप इस कृष्ण भावनामृत आंदोलन के आध्यात्मिक नेता कब बने ?

श्रील प्रभुपाद : क्या कहा ?

ब्रह्मानंदा : यह पूछा रहा है कि आप कृष्ण भावनामृत के आध्यात्मिक नेता कब बने ?

श्रील प्रभुपाद : जब मेरे गुरु महाराज ने मुझे आदेश दिया। यही गुरु परम्परा है।

भारतीय व्यक्ति : क्या यह ----

श्रील प्रभुपाद : समझने की कोशिश करो। तीव्रता से आगे मत जाओ। एक व्यक्ति तभी गुरु बन सकता है जब उसके गुरु ने उसे आदेश दिया हो। यह तथ्य सर्वस्व है। अन्यथा कोई गुरु नहीं बन सकता।

(श्रील प्रभुपाद भगवद्-गीता प्रवचन, २८/१०/७५)

इस तरह श्रील प्रभुपाद के अनुसार कोई दीक्षा गुरु तभी बन सकता है, जब उसके पास योग्यता और आदेश हो। श्रील प्रभुपाद ने ऐसे किसी गुरु की नियुक्ति नहीं की थी और न ही उन्होंने कहा था कि उनके शिष्यों में से कोई दीक्षा देने के लिए योग्य है। इसके विपरीत ६ जुलाई के पत्र के दो महीने पहले ही उन्होंने यह स्वीकार किया था कि उनके शिष्य अभी तक ‘बद्धजीव’ थे और अत्यधिक सतर्क एवं सजग रहना आवश्यक था ताकि कहीं कोई आप को गुरु न घोषित कर दे।

(कृपया परिशिष्ट देखें, २२ अप्रैल १९७७)

ऋत्त्विक प्रणाली को बदलकर किसी दूसरी प्रणाली को स्थापित करने के समर्थन में दिए गए प्रमाणों को तिन मूल वर्गों में बाँटा जा सकता है।

- (क) श्रील प्रभुपाद द्वारा सभी को बार-बार गुरु बनने का आह्वान करना जो कि श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिया गया आदेश 'आमार आज्ञाय गुरु हाना' पर आधारित है।
- (ख) श्रील प्रभुपाद के आधे दर्जन के करीब लिखे गए व्यक्तिगत पत्र जिसमें उनके प्रदार्पण के बाद उनके शिष्यों के दीक्षा गुरु होने की बात कही गई है।
- (ग) श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों एवं प्रवचनों में दिए गए कथन जहाँ शिष्य आगे चलकर कमशः दीक्षा गुरु होने के विधान का उल्लेख है।

(क) श्रेणी का विश्लेषण :

चैतन्य चरितामृत के निम्नलिखित श्लोक में सभी को गुरु बनने का आदेश दिया गया है। श्रील प्रभुपाद इस श्लोक को कई बार कहा करते थे :

'सभी को भगवद् — गीता एवं श्रीमद् — भागवतम् में कृष्ण द्वारा दिये गये उपदेशों का पालन करने को कहो। इस तरह गुरु बनो और इस क्षेत्र में सभी को मुक्त करने का प्रयास करो।'

(चैतन्य चरितामृत मध्य, ७.१२८, भावार्थ)

परन्तु, श्री चैतन्य महाप्रभु जिस तरह के गुरु बनने का आदेश दे रहे हैं वह निम्नलिखित भावार्थों में स्पष्ट हो जाता है :

'इसका अर्थ है, अपने घर में रहो, हरे-कृष्ण मंत्र का जाप करो और भगवद्-गीता और श्रीमद्-भागवतम् में दिये कृष्ण उपदेशों का प्रचार करो।

(चैतन्य चरितामृत मध्य, ७.१३०, भावार्थ)

'गृहस्थ, चिकित्स, अभियांत्रिक अथवा कुछ और बने रह सकते हो। इसमें कोई हर्ज नहीं है। केवल श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का पालन करना चाहिये। हरे-कृष्ण मंत्र का जप करना चाहिये और सपने रिश्तेदारों और दोस्तों को भगवद्-गीता एवं श्रीमद्-भागवतम् की शिक्षाओं को बताना चाहिये.... सबसे उत्तम यह होगा कि कोई शिष्य नहीं स्वीकारे।'

(चैतन्य चरितामृत मध्य, ७.१३०, भावार्थ)

हम यहाँ देख सकते हैं कि उपर्युक्त गुरु का कार्य करने से पूर्व किसी प्रकार की साधना सिद्धि की आवश्यकता नहीं है। यह निवेदन वर्तमान का है। स्पष्टतः सभी को उत्साहित किया जा रहा है कि जो मालूम हो उसका प्रचार करो। पह करते वृत्त इस प्रकार शिक्षा गुरु बनो। इसका स्पष्टीकरण इस निर्देश से होता है कि —

'सबसे उत्तम होगा कि कोई नहीं स्वीकारे।'

(चैतन्य चरितामृत मध्य, ७.१३०, भावार्थ)

शिक्षा गुरु को अपने स्थान पर ही रहना चाहिये, दीक्षा गुरु बनने का स्वपन नहीं देखना चाहिये। दीक्षा गुरु का प्राथमिक कार्य है, शिष्य स्वीकारना। जबकि शिक्षा गुरु क्षमतानुसार केवल कृष्ण भावनामृत का प्रचार करता है और अपने कार्य रहता है। श्रील प्रभुपाद के इस भावार्थ से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपरिक्त श्लोक में श्री चैतान्य महाप्रभु शिक्षा गुरु बनने का अधिकार दे रहे हैं, दीक्षा गुरु बनने का नहीं।

निम्नलिखित कथनों से यह और भी स्पष्ट हो जाता है जहाँ श्रील प्रभुपाद सबको गुरु बनने का आह्वान कर रहे हैं :

‘यारे देखा, तारे कह, कृष्ण उपदेश। तुम्हें कुछ भी अविष्कार करने की आवश्यकता नहीं। जो श्रीकृष्ण ने अब तक कहा है, उसको दोहराओ। बस। कुछ भी ना जोडो, बदलो। तब तुम गुरु बनोगे....। मैं एक बेचकूफ मूढ हो सकता हूँ..... तो हमें इस पथ का अनुसरण करना चाहिए, कि तुम गुरु बनो, अपने पडोस के लोगों, मिलने वालों का उद्धार करो, पर कृष्ण के प्रमाणिक शब्द ही दुहराओ। तब यह काम करेगा इसे कोई भी कर सकता है। एक बच्चा भी।

(श्रील प्रभुपाद संध्या दर्शन, ११/५/७७, ऋषिकेश)

‘क्योंकि लोग अंधकार में डुबे हुए हैं, हमें लाखों गुरुओं की आवश्यकता है जो उनको ज्ञान दे। इसलिए चैतन्य महाप्रभु का आंदोलन है.... उन्होंने कहा था, तुम सब गुरु बनो।’

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, २१/५/७६, होनोलूलू)

“तुम सिर्फ कहो.... कृष्ण बोलते हैं ‘निरन्तर मेरा ध्यान करो, मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो और मुझे नमन करो। कृपया यह सब करो। तो अगर तुम सिर्फ एक व्यक्ति को यह करने के लिये प्रेरित कर सके तब तुम गुरु बने। क्या इसमें कुछ मुश्किल है ?”

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, २/८/७६, पेरिस)

“असली गुरु वह है जो वही उपदेश दे जो कृष्ण ने कहा है.... तुम्हें सिर्फ यही कहना है ‘यह ऐसे है’ बस! क्या यह अति कठिन कार्य है ?”

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, २१/५/७६, होनोलूलू)

....’परन्तु मैं योग्य नहीं हूँ। मैं गुरु कैसे बन सकता हूँ।’ योग्यता की कोई जरूरत नहीं है। जिससे भी मिलो, सिर्फ वही कहो जो श्रीकृष्ण ने कहा है। बस! तुम गुरु बन गये।’

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, २१/५/७६, होनोलूलू)

(आश्चर्यजनकपूर्वक, कुछ भक्तों ने इन कथनों से मिनिमली क्वालिफाइड दीक्षा गुरु (न्यूनतम योग्य दीक्षा गुरु* (१) को उचित बतलाना चाहा है। जबकि इस तरह के गुरु का वर्णन श्रील प्रभुपाद की किताबों, पत्रों, प्रवचनों, अथवा वार्तालापों में एक बार भी नहीं किया गया है।)

ऐसे गुरु, जिनकी योग्यता सिर्फ यह है कि उसने जो सुन है वही दुहराए, का उदाहरण इस्कॉन के किसी भी नए ‘भक्त’ में मिल जाएगा। उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि ये कथन शिक्षा गुरु बनने का निमंजण है। हम यह जोर देकर कह सकते हैं क्योंकि श्रील प्रभुपाद ने अपनी पुस्तकों में दीक्षा गुरु की अति

उच्च योग्यता बता रखी है।

‘जब कोई व्यक्ति महाभागवत् की उच्चतम अवस्था अर्जित कर लेता है तब उसे गुरु मान लेना चाहिये और उसे भगवान पुरुषोत्तम हरि की तरह पूजा जान चाहिए। केवल यह योग्य व्यक्ति ही गुरु की पदवी ग्रहण कर सकता है।’

(चैतन्य चरितामृत मध्य, २४.३३०, भावार्थ)

‘गुरु-शिष्य परम्परा में आने वाले किसी योग्य गुरु से ही दीक्षा लेनी चाहिये। ऐसे गुरु को उसके गुरु ने यह अधिकार दिया होगा। इस दीक्षा-विधान कहते हैं।’

(श्रीमद्-भागवतम्, ४.८.५४, भावार्थ)

उपर्युक्त कथनों में श्रील प्रभुपाद बताते हैं कि दीक्षा गुरु बनने का आदेश अपने गुरु द्वारा मिलना चाहिये। श्री चैतन्य का आदेश पिछले ५०० साल से पाचलित था। वह स्पष्ट है कि श्रील प्रभुपाद ‘आमार आज्ञाया गुरु हाना’ आदेश को दीक्षा संबंधी आदेश नहीं मानते थे। नहीं तो वह अपने गुरु के द्वारा प्रतिपादित एक और आदेश की बात क्यों करते ? श्री चैतन्य का आदेश शिक्षा गुरु बनने का आह्वान है न कि दीक्षा गुरु बनने का। दीक्षा गुरु कए अपवाद है, नियम नहीं। बल्कि श्रील प्रभुपाद लाखों पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को शिक्षा गुरु बनना देखना चाहते थे।

(ख) श्रेणी प्रभुपाद की उपस्थिति में भी कुछ मुड़ीभर ऐसे अति आत्माविश्वासी शिष्य थे जो खुद दीक्षा प्रणाली देकर अपने शिष्य बनाना चाहते थे। श्रील प्रभुपाद ने उन्हें खुद कुछ पत्र लिखे थे। ये पत्र म.आ.स.सि दीक्षा प्रणाली के प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किये जाते हैं। श्रील प्रभुपाद का इन महत्त्वकांक्षी शिष्यों से एक ही तरह का बर्ताव होता था। सामान्यतः वे उनसे यह कहते थे कि वर्तमान में तो सावधानपूर्वक प्रशिक्षित रहो और भविष्य में उनके प्रस्थान उपरान्त शिष्य स्वीकार सकते हो।

‘पहली चीज, मैं अच्यतानंद को चेतावनी देता हूँ, दीक्षा देने का प्रयास न करो। तुम ऐसी स्थिति में नहीं हो कि दीक्षा दे सको ...ऐसी माया से भ्रमित ना हो। मैं तुम सबको भविष्य में गुरु बनने की शिक्षा दे रहा हूँ, परन्तु जल्दबाजी मत करो।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र अच्यतानंद एवं जय गोविंद को, २१/८/६८)

‘कुछ समय पहले तुमने अपने खुद के शिष्य स्वीकारने की आज्ञा माँगी थी। द्याह समय अब जल्द ही नजदीक आ रहा है जब अपने प्रभावशाली प्रचार से तुम कई शिष्य बनाओगे।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र अच्यतानंद को, १६/५/७२)

‘मेरे सुनने में आया है कि दूसरे भक्तों द्वारा तुम्हारी थोड़ी पूजा हो रही है। यह सही है कि वैष्णव को नमन करना चाहिए, पर गुरु के प्रस्थान उपस्थिति में नहीं। गुरु के प्रस्थान उपरान्त वह स्थिति आयेगी, पर अभी रुको। नहीं तो अलग-अलग पक्ष बन जावेंगे।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र हंसदूता को, १/१०/७४)

* (१) - जी.वी.सी. के इस्कॉन जर्नल १६६० में प्रकाशित अजामिला दास का लेख ‘रेगुलर या ऋत्तिक’ इस प्रकार के अर्थ की वकालत करता है।

‘सावधानीपूर्वक प्रशिक्षण करते रहो और तब तुम प्रामाणिक गुरु हो। और उसी सिद्धान्त पर शिष्य ले सकते हो। पर यह शिष्टाचार की रीति है कि अपने गुरु की उपस्थिति में, होने वाले शिष्य को गुरु के पास लेकर आओ और गुरु की अनुपस्थिति में बिना किसी रोक-टोक के शिष्य स्वीकारो। यह गुरु-शिष्य परम्परा का कानून है। मैं चाहता हूँ कि मेरे शिष्य प्रामाणिक गुरु बनें और कृष्ण भावनामृत का दूर-दूर तक प्रसार करे। इससे मुझे और कृष्ण दोनों को खुशी होगी।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र तुष्ट कृष्ण को, २/१२/७५)

मजेदार बात तो यह है कि जैसे तो जी.आई.आई. में म.आ.स.सि. दर्शन के प्रमाण के लिए इस ‘कानून’ का उपयोग किया गया है, फिर भी उसी दस्तावेज में यह स्वीकार किया गया है कि यथार्थ में यह कानून नहीं ही : शास्त्रों में ऐसे कोई उदाहरण है जहाँ गुरु की उपस्थिति में ही शिष्य दीक्षा देते हैं। शास्त्रों में ऐसा कोई विशेष निर्देश नहीं जहाँ यह कहा गया हो कि शिष्य को गुरु की उपस्थिति में दीक्षा नहीं देनी चाहिए।’ (जी.आई.आई., पृष्ठ २३)

सम्मान, पूजा एवं अनुयायी ग्रहण करने की उत्सुकता एक अयोग्यता है। ऐसा अयोग्य व्यक्ति गुरु नहीं बन सकता। हम तो घमंड के प्रकोप की सिर्फ प्रशंसा ही कर सकते जिससे धरती के इतिहास के सबसे महान आचार्य की शारीरिक उपस्थिति में भी ऐसे कुछ व्यक्ति खुद दीक्षा देने के लिये अपने आप को योग्य समझ बैठे। * (२)

इन पत्रों में यह स्पष्ट दिखता है कि श्रील प्रभुपाद ऐसे शिष्यों को थोड़ा और धीरज रखने को कहकर उन्हें भक्ति सेवा में रखना चाह रहे थे। ऐसा करने से यह संभावना तो रहती थी कि समय के साथ इनकी महत्त्वकांक्षी इच्छाएँ शुद्ध हो जाएँगी।

श्रेय कई नम्र भक्त थे जो दृढता, श्रद्धा और स्वार्थहीनता से अपने गुरु की सेवा में लीन थे। ऐसे भक्तों को कभी ऐसा पत्र न मिला जिसमें उनके गुरु बनने के प्रज्वल भविष्य का वर्णन हो। गुरु बनने की महत्त्वकांक्षा ही आयोग्यता होती है। तब श्रील प्रभुपाद ने ऐसे महत्त्वकांक्षी शिष्यों को ही दीक्षा गुरु बनाने का वायदा क्यों किया ?

श्रील प्रभुपाद के ऐसे भी कथन हैं जहाँ उन्होंने अपनी देह त्यागने के उपरान्त अपने शिष्यों को दीक्षा देने की स्वतंत्रता दी थी। यह कथन सत्य है। उदाहरणतया भारत में १८ वर्ष की आयु से कार चलाने के लिये हर कोई स्वतन्त्र होता है। परन्तु हमें दो चीजे नहीं भूलनी चाहिये- पहले उसे कार चलाना आना चाहिये (यानी योग्य होना चाहिये) दूसरे उसको ‘ड्राइविंग लाइसेंस’ अधिकारी द्वारा ‘अधिकार’ मिलना चाहिये। पाठक समानांतर खुद निकाल सकते हैं।

म.आ.स.सि. के प्रमाणस्वरूप एक और पत्र प्रस्तुत किया जाता है :

‘१६७५ से, वे सब जो सभी उपर्युक्त परीक्षाओं में उत्तीर्ण होंगे उन्हें दीक्षा देने हेतु विशेष अधिकार मिलेगा जिससे वे कृष्ण भावनामृत सदस्यों की संख्या बढ़ा सकेंगे।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र कीर्तनानन्द को, १२/१/६६)

* (२) - यहाँ हम सूचित करना चाहेंगे कि उपर्युक्त ज्यादातर भक्तों ने अपने गलती को पहचाना है इसलिए उन्हें हम किसी अपराध या कठिनाई पहुँचाने के लिए क्षमा चाहते हैं। शायद वह इस बात से सहमत होंगे कि उनके व्यक्तिगत अनर्थों को संबोधित करके श्रील प्रभुपाद द्वारा लिखे गए पत्रों को आज इस्कॉन में चलित म.आ.स.सि. (बहुल आचार्य परंपरा प्रणाली) का समर्थन करने के लिए प्रयोग में लाया जा रहा है।

क्या उपर्युक्त कथन द्वारा दीक्षा संबंधी अंतिम आदेश को रोका जा सकता है ?

क्योंकि यह व्यक्तिगत पजों द्वारा ऋत्विक् प्रणाली रोकाने का प्रयास है, हम यहाँ श्रील प्रभुपाद के 'गुरु-शिष्य परम्परा के कानून' का उपयोग करेंगे। इस कानून के प्रथम भाग के अनुसार अपने गुरु की सशरीर उपस्थिति में किस शिष्य को दीक्षा आचार्य नहीं बनना चाहिये। यह 'कानून' लागू करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त पज में श्रील प्रभुपाद अपने शिष्यों को दीक्षा गुरु बनकर अपने शिष्य बनाने के लिये नहीं कह रहे हैं। वे १६७५ में इस धरती पर ही थे। इससे यह स्वभावतः निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि श्रील प्रभुपाद शुरूआती वर्षों यानी १६६६ में भी किस प्रकार की 'अधिकारिक' दीक्षा प्रणाली का मनन कर रहे थे। और जैसा वाद में हुआ, श्रील प्रभुपाद ने सचमुच १६७५ तक अपने कुछ शिष्यों, जैसे कि कीर्तनानन्द को दीक्षा से पहले माला पर जपना और दीक्षा होम है कि यह पज दीक्षा देने के लिये प्रतिनिधियों के उपयोग की भविष्यवाणी करता है। तदुपरान्त इन प्रतिनिधियों को उन्होंने 'ऋत्विक्' नाम दिया और ६ जुलाई के पज से उनके कार्य को औपचारिक बना दिया। श्रील प्रभुपाद क्या कीर्तनानन्द को कुछ परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने पर संप्रदय के दीक्षा आचार्य की पदवी दे सकते थे ?

'श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों को उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि के संरक्षण में पालन कर कोई भी गुरु बन सकता है। और मेरी इच्छा है कि मेरी अनुपस्थिति में मेरे सारे शिष्य प्रामाणिक गुरु बनें और कृष्ण भावनामृत का समस्त मे प्रचार करें।'

(श्रील प्रभुपाद का पज मधुसूदन को, २/११/६७)

यहाँ श्रील प्रभुपाद अपनी अनुपस्थिति में शिष्यों को गुरु बनने को कह रहे। इस कथन का उपयोग कर यह तर्क दिया जाता है कि श्रील प्रभुपाद उन्हें दीक्षा गुरु बनने को कह रहे हैं, क्योंकि वे शिक्षा गुरु पहले से ही थे। संभवतः यह भी तो हो सकता है कि उन्हें अच्छे शिक्षा गुरु बनने का प्रोत्साहन फिर दे रहे हों। और यह भी कि उनकी अनुपस्थिति में भी अच्छे शिक्षा गुरु बनें रहे। निश्चित ही यहाँ यह नहीं कहा गया है कि उनके शिष्य दीक्षा दे सकते हैं और खुद के शिष्य बना सकते हैं। यह कथन कि 'प्रामाणिक गुरु बनें और कृष्ण भावनामृत का समस्त संसार में प्रचार करें' शिक्षा गुरु पर भी समान रूप से लागू होता है।

हो सकता है कि ये पज किसी और तरह की गुरु प्रणाली का संकते दे रहे हों। अगर यह मान भी ले तो भी यह पज ६ जुलाई के अन्तिम आदेश को बदल नहीं सकते; क्योंकि ये पज समस्त आंदोलन को दुहराए नहीं गये थे। उपर्युक्त पज १९८६ तक प्रकाशित ही नहीं हुए थे। कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि ये पज संस्था

के कुछ सदस्यों के पास किसी तरह पहुँच गये थे। ऐसा हो सकता है या नहीं भी। परन्तु प्राथमिकता तो इस तथ्य पर दी जानी चाहिये कि श्रील प्रभुपाद ने इस तरह की वितरण प्रणाली न तो स्थापित की और नहीं अनुमोदित। हमें इस तरह का सबूत कहीं नहीं मिलता जहाँ श्रील प्रभुपाद ने अपने निजी पज-व्यवहार को सर्वज वितरित करने का आदेश दिया हो। उन्होंने एक बार लापरवाह प्रतीत होते हुए कह दिया था कि उनके पजों को 'समय होने' पर प्रकाशित किया जा सकता है। परन्तु उन्होंने ऐसा संदेश कभी नहीं भेजा कि इन पजों के बिना म.आ.स.सि. को लागू करने की पूर्ण जानकारी नहीं मिलेगी।

१६७७ मे क्या होना चाहिए था – इसकी दलील पेश करने के लिए सारे प्रमाण उसी समय अधिकारिक रूप में एवं सरलता से उपलब्ध होने चाहिए थे। अगर इन्ही पजों में भविष्य के १० हजार सालों की दीक्षा प्रणाली की कुंजी छुपी थी, तो श्रील प्रभुपाद निश्चित ही इनका प्रकाशन और बड़ी संख्या में वितरण अंतिमहत्त्वपूर्णता से करते। ऐसा भी हो सकता था कि कुछ वरिष्ठ भक्तों ने उनके निजी पज न पढे हो और इस कारणवश स्पष्टतापूर्वक समझ न पाए हों कि श्रील प्रभुपाद के शारीरिक प्रस्थान उपरान्त दीक्षा प्रणाली किस तरह चलेगी। और ऐसा समझना गलत नहीं है; क्योंकि २८ मई १६७७ तक भी सम्पूर्ण जी.बी.सी. को यह ज्ञात नहीं था कि श्रील प्रभुपाद क्या करना चाह रहे हैं। (कृपया परिशिष्ट देखिए)

अतः यह कहना कि इसी तरह के मुठ्ठीभर पत्रों के कारण ६ जुलाई के पत्र को बदल देना चाहिये सरासर बेईसाफी है। अगर यह इतने महत्वपूर्ण थे तो श्रील प्रभुपाद इनको ६ जुलाई के पत्र में सम्बोधित करते या संलग्न करते।

अन्त में दीक्षा के लिए एक ही पदवी दी गयी थी वह थी आचार्य के प्रतिनिधि की तरह यानी ऋत्विक्।

अंत में (ग) श्रेणी का विश्लेषण :

ऋत्विक् प्रणाली को रोकने के लिए श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों और प्रवचनों से कई वाक्यों को प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। अब हम इन प्रमाणों का परीक्षण करेंगे।

प्रायः श्रील प्रभुपाद की किताबों में हमें दीक्षा गुरु की योग्यताओं का वर्णन मिलता है। ऐसा कोई विशेष कथन नहीं है जो उनके शिष्यों के क्रमशः दीक्षा गुरु होने की बात कर रहा हो। इसके विपरीत ये कथन केवल इसी बात पर जोर देते हैं कि दीक्षा गुरु बनने के लिए बहुत ही उच्च योग्यता एवं अपने गुरु द्वारा आदेश प्राप्त होना चाहिए।

‘जो अभी शिष्य है वह अगला गुरु होगा। यदि कोई दृढतापूर्वक गुरु का आज्ञाकारी नहीं रहा हो तो वह प्रामाणिक व सहमति प्राप्त गुरु नहीं बन सकता।’

(श्रीमद्-भागवतम्, २.६.४३, भावार्थ)

उपर्युक्त निर्देश किसी तरह से भी यह छूट नहीं देता कि केवल गुरु के चले जाने के कारण कोई दीक्षा दे सकता है। गुरु के इस धरती को छोड़कर जाने का विचार इस निर्देश में ही नहीं। केवल यह विचार है

कि उनको अनुमति प्राप्त होनी चाहिए व दृढतापूर्वक आज्ञाकारी होना चाहिए। हम पहले से यह जानते हैं कि उन्हें महाभागवत भी होना चाहिए।

कुछ भक्त ‘अन्य ग्रहों की सुगम यात्रा’ (पृष्ठ ३२) में सम्बोधित मोनिटर गुरु को प्रमाण बताते हुए म.आ.स.सि. (बहुल आचार्य परम्परा प्रणाली) का समर्थन करते हैं और यह निष्कर्ष निकालते हैं कि ऋत्विक् प्रणाली को बंद कर देना चाहिए, किन्तु यक उदाहरण स्पष्ट रूप से शिक्षा की परिभाषा देता है दीक्षा गुरु की नहीं। पुस्तक के इस अंश के अनुसार ‘मोनिटर’ गुरु अपने निर्देशक

की ओर से काम करते हैं, वह स्वयं निर्देशक नहीं है। वह निर्देशक होने के लिए योग्य हो सकता है परन्तु इसके लिए एक प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया निर्देशक के अंतर्धान होने पर अपने आप ही सक्रिय नहीं होती (निर्देशक का अर्थ है दीक्षा गुरु)। ‘मोनिटर गुरु’ केवल शिक्षा के लिए ही शिष्य रख सकते हैं और वह भी सीमित संख्या में। जब ये ‘मोनिटर गुरु’ योग्य हो जाएँ यानी महाभागवत बन जाएँ और पूर्व आचार्य से उन्हें सहमति या आदेश प्राप्त हो तब उनको फिर ‘मोनिटर गुरु’ नहीं कहा जाएगा। तब वे स्वयं गुरु होंगे, और तब असंख्य शिष्य बना सकते हैं। इस तरह, ‘मोनिटर’ शिक्षा गुरु है और निर्देशक एक दीक्षा गुरु है। शिक्षा गुरु, दीक्षा गुरु का दृढतापूर्वक अनुसरण करते हुए पूरी तरह योग्य बन सकते हैं और फिर दीक्षा देने की सहमति या आदेश पाने के पात्र बन सकते हैं। जब तक निर्देशक उपस्थित है तब तक ‘मोनिटर’ केवल अपने निर्देशक की साहयता करते हैं। यदि ‘मोनिटर गुरु’ वास्तव में दीक्षा गुरु ही है तो यह फिर गुरु परम्परा के कानून के विरुद्ध होगा जो म.आ.स.सि.

(बहुल आचार्य परम्परा प्रणाली) का समर्थन करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। निष्कर्ष में ‘मोनिटर गुरु’ निर्देशक (दीक्षा गुरु) का स्थान लेने के लिए अथवा उनका

उत्तराधिकारी बनने के लिए नहीं है बल्कि निर्देशक के साथ काम करने के लिए है।

निश्चित रूप से 'मोनिटर' प्रणाली जी.बी.सी. के संशोधनों (अ) और (ब) का समर्थन नहीं करती। संशोधन (अ)- ऋत्त्विक प्रणाली श्रील प्रभुपाद के देह त्यागने के उपरान्त बंद हो जानी थी। (ब)- ऋत्त्विक अपने आप ही दीक्षा गुरु बनते थे।

श्रील प्रभुपाद के पत्रों के आलावा भी कुछ ऐसे संदर्भ हैं जिनको लेकर कहा जाता है कि श्रील प्रभुपाद ने अपने शिष्यों को दीक्षा गुरु बनने की अनुमति दी थी –

‘अभी, दसवाँ, ग्यारहवाँ, बारहवाँ। मेरे गुरु महाराज चैतन्य महाप्रभु से दसवे थे, मैं ग्यारहवाँ हूँ और तुम बारहवे हो। तो अब इस ज्ञान का वितरण करो।’

(श्रील प्रभुपाद आगमन संबोधन, १८/५/७२, लॉस एंजिल्स)

‘साथ में मैं उन सबसे गुरु बनने का अनुरोध करूँगा। तुम सबको अगला गुरु बनन चाहिए।’

(श्रील प्रभुपाद व्यास-पूजा संबोधन, ५/७/६६, हेमवर्ग)

पहला कथन साफ-साफ यह बताता है कि श्रील प्रभुपाद के शिष्य पहले से ही बारहवें हो चुके हैं-‘तुम बारहवे हो’। अतएव यह भविष्य में दीक्षा गुरु बनने के लिए कोई अनुमति या आदेश नहीं है। यह केवल यही कहता है कि पहले से ही तुम परम्परा के संदेश का प्रसार कर रहे हो।

दूसरा कथन भी पहले कथन के अनुरूप ही है। यह निःसंदेश ही कहता है कि श्रील प्रभुपाद के शिष्य उनके बाद आते हैं, लेकिन जैसा कि पहला कथन कहता है वे अपने जोरदार प्रचार कार्य के कारण श्रील प्रभुपाद के उत्तराधिकारी बन चुके थे।

दोनों ही कथनों में शिष्य बनाने का स्पष्ट आदेश नहीं है अपितु प्रचार करने का आदेश है; क्योंकि श्रील प्रभुपाद ने कहा कि तुम अगले गुरु होंगे, इसका यह मतलब नहीं होता कि श्रील प्रभुपाद चाहते थे कि वे अगले दीक्षा गुरु बनें। श्रेया कहना या समझना मन की कल्पना मात्र है।

यह तर्क देना कि ऐसे कथन श्रील प्रभुपाद के अंतिम आदेश को स्थगित कर देते हैं, विल्लकुल असमर्थनीय है। इसको श्रील प्रभुपाद के अन्य कथनों से विपरीत साबित किया जा सकता है। उनके प्रस्थान के बाद क्या होगा ? इस संबंध में श्रील प्रभुपाद के कई कथन उपर्युक्त मनोधारणाओं का विरोध करते हैं।

रिपोर्टर : आपकी मृत्यु पश्चात् अमरीका में आपके आंदोलन का क्या होगा ?

श्रील प्रभुपाद : मेरी मृत्यु कभी नहीं होगी।

भक्तगण : जय ! हरी बोल ! (हँसी)

श्रील प्रभुपाद : मैं अपनी पुस्तकों द्वारा जीवित रहूँगा और तुम लाभ उठाओगे।

(श्रील प्रभुपाद पत्रकार सम्मेलन, १६/७/७५, सेन फ्रॉन्सिको)

यदि श्रील प्रभुपाद म.आ.स.सि. प्रणाली (बहुल आचार्य परम्परा प्रणाली) चाहते थे तो इसका उल्लेख करने का यह स्पष्ट अवसर था। ऐसा कहने की बजाय कि मेरे शिष्य दीक्षा गुरु बनेंगे उन्होंने कहा कि वे कभी नहीं मरेंगे और उनकी किताबें ही सारा आवश्यक कार्य करेंगी। उपर्युक्त संवाद से पता चलता है कि श्रील प्रभुपाद अब भी सजीव गुरु है और वे अपनी पुस्तकों के माध्यम से दिव्य ज्ञान (दीक्षा का मुख्य अंग) दे रहे हैं और यह तब चलता रहेगा जब तक इस्कॉन रहेगा। इस प्रक्रिया में सहायक होना ही उनके शिष्यों का योगदान है।

‘अपरिक्व आचार्य न बनो। पहले आचार्य के आदेशों का पालन कर परिपक्व बनो। उसके बाद आचार्य बनन अच्छा रहेगा। हम लोग आचार्य बनाना चाहते हैं लेकिन शिष्टाचार यह है कि जब तक गुरु उपस्थित है किसी को आचार्य नहीं बनन चाहिए। यदि वह संपूर्ण रूप से परिपक्व हो गया हो तब भी नहीं; क्योंकि शिष्टता इसी में है कि यदि कोई दीक्षा लेना चाहता है तो यह शिष्य का कर्तव्य है कि वह उस व्यक्ति को अपने आचार्य के पास ले जाए।’

(श्रील प्रभुपाद चैतन्य चरितामृत प्रवचन, ६/४/७५, मायापुर)

उपर्युक्त कथन जरूर यह नियम बताता है कि शिष्य आगे चलकर आचार्य बन सकते हैं। परन्तु यह जोर देकर कहा जा रहा है कि वे अभी नहीं बने। वल्कि, तभी श्रील प्रभुपाद शिष्यों के आचार्य बनने की बात करते हैं, जब अपनी सशरीर उपस्थिति में गुरु बनने से रोकना हो। वे यही प्रक्रिया निजी पजों में भी अपनाते हैं।

स्पष्ट रूप से यह केवल एक नियम बताता है न कि अपने शिष्यों को गुरु बनने का स्पष्ट आदेश। जैसा हम ‘अपाइंटमेंट टेप’ के विश्लेषण में देखेंगे कि श्रील प्रभुपाद ने मई १६७७ तक भी दीक्षा गुरु बनने का स्पष्ट आदेश नहीं दिया था। (“मेरे आदेश पर,....परन्तु मेरे आदेश पर,....जब मैं आदेश दूँ”) और उनके देह त्यागने तक यही स्थिति वर्तमान रही। उपर्युक्त प्रवचन में तो आगे चलकर वे बताते हैं कि गुरु बनने की महत्त्वांक्षा को जिस तरफ मोड़ा जाये:

“और आचार्य बनना ज्यादा मुश्किल नहीं है.... आमार आज्ञाय गुरु हाना तारा एई देश, यारे देखा तारे कह कृष्ण उपदेश ‘मेरे आदेश का पालन कर, तुम गुरु बनो।’....फिर, भविष्य में जैसे तुम्हारे पास है अभी दस हजार। हम इसे बढ़ाएंगे एक लाख। यह हमें चाहिए। फिर एक लाख से दस लाख; और दस लाख से एक करोड़।”

(श्रील प्रभुपाद चैतन्य चरितामृत प्रवचन, ६/४/७५,)

यह पहले ही बताया जा चुका है कि चैतन्य महाप्रभु का आदेश सबको प्रचार करने व ज्यादा कृष्ण भक्त बनाने के लिया था, शिष्य बनाने के लिए नहीं। श्रील प्रभुपाद भी उसी बात को दोहराते हुए अपने शिष्यों को प्रोत्साहन देने के लिए कह रहे हैं कि बहुत से भक्त बनाओ। श्रील प्रभुपाद का यह कथन ‘यदी तुम्हारे पास अभी दस हजार....(अर्थात श्रील प्रभुपाद की उपस्थिति में) बहुत महत्त्वपूर्ण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वे कृष्ण भावनामृत अनुयायियों की बात कर रहे अपने ‘शिष्य के शिष्यों’ की नहीं; क्योंकि उस प्रवचन का मुख्य विषय था कि वे श्रील प्रभुपाद की उपस्थिति में दीक्षा न दें।

इसका अर्थ यह होगा कि उस समय करीब दस हजार अनुयायी होंगे और भविष्य में सहस्रों अनुयायी और जाड़ि जाएँगे। ऋत्तिक प्रणाली यह तय करेगी कि ये अनुयायी कब दीक्षा लेने योग्य होंगे ध्यान रखेंगी कि इन अनुयायियों में से जब भी कोई दीक्षा के योग्य हो उ

से श्रील प्रभुपाद से दीक्षा प्राप्त हो ठीक उसी तरह जब श्रील प्रभुपाद सशरीर उपस्थित थे व उपरोक्त भाषण दे रहे थे।

निष्कर्ष में :

श्रील प्रभुपाद द्वारा दीक्षा गुरु बनने के लिए अपने शिष्यों को दिये गये ऐसे किसी आदेश का प्रमाण नहीं है जो ऋत्विक् प्रणाली का स्थान ले सके।

हमारे पास जो है वह मुट्टीभर (उस समय अप्रकाशित) व्यक्तिगत पत्र जे उन्ही लोगों को भेजे गए थे जो श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति में ही दीक्षा देना चाहते थे। इनमें से कुछ लोगों को तो आंदोलन में प्रविष्ट हुए ज्यादा समय भी नहीं हुआ था। ऐसे मामलों में उन्हें अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ती करने के लिए कम से कम श्रील प्रभुपाद के देह त्यागने तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा जाता था। चूँकि ये सब पत्र इत्यादि ६ जुलाई के पत्र के समय तक भी प्रकाशित नहीं किए गए थे। इससे हम समझ सकते हैं कि इनका इस्कॉन की भविष्य की दीक्षा प्रणाली से कई सीधा संबंध नहीं था।

श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों और वार्तालाप में केवल उनके शिष्यों के गुरु बनने के आदेश ही मिलते हैं। वैसे शिष्य के दीक्षा गुरु बनने के सामान्य सिद्धांत को संबोधित किया गया है परन्तु श्रील प्रभुपाद अपने शिष्यों को दीक्षा गुरु बनकर अपने ही शिष्य बनाने का आदेश नहीं देते।

उपर्युक्त उद्धृत वाक्य किसी भी रूप में ६ जुलाई के स्पष्ट आदेश का स्थान नहीं ले सकते। ६ जुलाई का आदेश सारे आंदोलन को भेजा गया प्रबन्धन प्रणाली का एक विशेष दस्तावेज है। वर्तमान म.आ.स.सि.(बहुल आचार्य परम्परा प्रणाली) को रेखांकित करने वाले इस तरह का कोई दस्तावेज नहीं है।

इस तरह यह विचार कि श्रील प्रभुपाद ने कई जगह और कई बार अपने शिष्यों को उनके प्रस्थान के तुरन्त बाद या कुछ देर बाद या कभी भी दीक्षा गुरु बनने का आदेश दिया था, महज एक कल्पना ही है।

सामान्यतः यह भी कहा जाता है कि श्रील प्रभुपाद ने बार-बार अपनी पुस्तकों, पत्रों, प्रवचनों एवं वार्तालापों में निश्चित रूप से यह स्पष्ट कर दिया था कि वे भविष्य की दीक्षा प्रणाली किस प्रकार चाहते थे, इसलिए यह जरूरी नहीं था कि श्रील प्रभुपाद इसको ६ जुलाई के पत्र में फिर से बतलाएँ। ऐसा दावा पूरी तरह गलत तो है हि वल्कि यह और अधिक असामंजस्य की स्थिति पैदा कर देता है। यदि श्रील प्रभुपाद की शिक्षाओं में यह बहुत स्पष्ट था कि उनकी अनुपस्थिति में वे दीक्षा प्रणाली को किस प्रकार जारी रखना चाहते थे और यदि उन्होंने सोचा था कि इस मामले में किसी विशेष निर्देश की आवश्यकता नहीं थी तो जी.बी.सी. ने एक विशेष आयोग का गठन कर उसे श्रील प्रभुपाद के पास क्यों भेजा ? इस आयोग का मुख्य लक्ष्य यही मालूम करना था कि दीक्षा कैसे दी जाएगी, विशेषकर जब श्रील प्रभुपाद हमारे बीच नहीं रहेंगे। (कृपया परिशिष्ट देखें, एपॉइंटमेंट टेप) उस समय श्रील प्रभुपाद देह त्यागने का विचार कर रहे थे। ऐसी अवस्था में उनके वरिष्ठ शिष्य कुछ ऐसे आधारहीन प्रश्न पूछ रहे थे जिनका उत्तर अनुसार पिछले में श्रील प्रभुपाद कई बार दे चुके थे।

यदि श्रील प्रभुपाद ने स्पष्ट रूप से म.आ.स.सि. (वर्तमान में चलित बहुल आचार्य परम्परा प्रणाली) को स्थापित करने के लिए कहा था तो उन्होंने इसको स्थापित करने के संबंध में इतने कम आदेश क्यों छोड़े, जिसके कारण, श्रील प्रभुपाद के समाधि लेने के कुछ समय बाद ही उनके वरिष्ठ शिष्य श्रीधर महाराज के पास जाकर यह पूछने को बाध्य हो गए कि इस प्रणाली को किस प्रकार लागू किया जाए।

यदि सबके लिए यह अति स्पष्ट था कि श्रील प्रभुपाद चाहते थे कि उनके शिष्य गुरु बने तो जी.बी.सी. फिर 'जोनल आचार्य प्रणाली' (क्षेत्रीय आचार्य प्रणाली) का गठन क्यों किया ? यहाँ गुरु बनने का अधिकार कुछ लोगों तक ही सीमित था, और इस प्रणाली को एक

पूरे दशक यानी दस साल तक चलने दिया गया।

हालाँकि हम जी.बी.सी. के लेख जी.आई.आई. की आलोचना कर रहे हैं फिर भी इसका एक अंग श्रील प्रभुपाद के परिवार को एकजुट करने का भाव रखता है। वह है :

‘एक शिष्य का एकमात्र कर्तव्य है कि वह अपने गुरु की पूजा एवं सेवा करे। उसका मन इस बात से व्याकुल या जस्त नहीं होना चाहिए कि वह किस प्रकार गुरु बने। एक भक्त, जो सच्चे मन से आध्यात्मिक प्रगति करना चाहता है, उसे चाहिए कि वह शिष्य बनने की कोशिश करे, गुरु बनने की नहीं।’

(जी.आई.आई., पृष्ठ २५, जी.बी.सी., १६६५)

हम इससे पूरी तरह सहमत हैं।

८.” शायद श्रील प्रभुपाद की किताबों में कई ऐसा शास्त्रिक निर्देश है जिससे गुरु को दीक्षा देते वक्त शिष्य के समान ग्रह पर ही होना चाहिए ?”

श्रील प्रभुपाद की प्रस्तकों में ऐसा कोई कथन नहीं है। उनकी पुस्तकों में सारे आवश्यक शास्त्रिक नियम दिये हुए हैं, अतः इस तरह का निषेध अपनी परम्परा में नहीं है।

श्रील प्रभुपाद के ऐसे कई कथन हैं जो यह स्पष्ट करते हैं कि गुरु-शिष्य संबंध शारीरिक निकटता पर निर्भर नहीं करते। (कृपया परिशिष्ट देखें) अतः श्रील प्रभुपाद के तिरोभाव उपरान्त ऋत्विक् प्रणाली का उपयोग उनके इन निर्देशों के अनुरूप है। इन कथनों को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि जी.बी.सी. के कुछ सदस्यों ने कुछ अलग तरह का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है :

‘श्रील प्रभुपाद ने हमें सिखाया है कि गुरु-शिष्य परम्परा एक जीवंत संबंध है.... गुरु-शिष्य परम्परा का कानून है कि हमें एक जीवंत गुरु लेना चाहिये-जीवंत मतलब कि शारीरिक उपस्थित।’

(शिवराम स्वामी, इस्कॉन जर्नल, पृष्ठ ३१, गौर पूर्णिमा १६६०)

उपर्युक्त कथन और निम्नलिखित कथनों में अंतर देखिये :

‘शारीरिक उपस्थिति महत्त्वपूर्ण नहीं है।’

(श्रील प्रभुपाद के कमरे में वार्तालाप, ६/१०/७७ वृन्दावन)

पा

‘शारीरिक उपस्थिति अनावश्यक है।’

(श्रील प्रभुपाद पत्र, १६/१/६७)

निश्चित ही, हमें एक ब्राह्मण गुरु की आवश्यकता है, क्योंकि प्राकृतिक गुणों के अधिन अवस्था में संपूर्ण रूप से परमात्मा का सहारा नहीं लिया जा सकता। परन्तु श्रील प्रभुपाद कही नहीं बताते कि शारीरिक गुरु मतलब शरीर उपस्थित भी होना चाहिए।

‘अतः हमें वाणी की साहयता लेनी चाहिए, शारीरिक उपस्थिति की नहीं’।
(चैतन्य चरितामृत, अंतिम शब्द)

श्रील प्रभुपाद ने इसका उदाहरण भी पेश किया था। उन्होंने ऐसे कई शिष्यों को दीक्षा दी जिनसे वे कभी शारीरिक रूप में मिले ही नहीं। इससे यह तथ्य सर्वथा प्रमाणित हो जाता है कि गुरु से शारीरिक संबंध के बिना भी दीक्षा मिल सकती है। शास्त्रों में या श्रील प्रभुपाद द्वारा दीक्षा और शारीरिक उपस्थिति को जोड़ा नहीं गया है। अतः ऋत्त्विक प्रणाली का चलन शास्त्र एवं अपने आचार्य के व्यक्तिगत उदाहरण से प्रमाणिक सिद्ध होता है।

श्रील प्रभुपाद की किताबों के दीक्षा संबंधी भाग में लिखा है कि दीक्षा पाने की एक ही आवश्यकता है-

गुरु की सहमती। यह सहमति पूर्ण रूप से ऋत्त्विक को सौंप दी गयी थी :

‘तो मेरा इंतजार किये बिना, तुम जिसे योग्य समझो। यह (तुम्हारे) विवेक पर निर्भर करेगा।’
(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, ७/७/७७, वृन्दावन)

श्रील प्रभुपाद हमें निर्देश देते हैं कि -

‘जहाँ तक दीक्षा के समय का सवाल है, सब गुरु की मर्जी पर निर्भर है....अगर सदगुरु, प्रमाणिक गुरु राजी हो जाते हैं, तो उसी समय दीक्षा मिल सकती है, उचित समय और स्थिति की प्रतीक्षा किये बिना भी।
(श्रील चरितामृत मध्य, २४ . ३३१, भावार्थ)

ऐसा कोई निर्देश नहीं है कि दीक्षा गुरु और संभावित शिष्य का किसी प्रकार का शारीरिक संपर्क होना चाहिए या अपनी सहमति देने के लिये दीक्षा गुरु की शारीरिक उपस्थिति जरूरी होनी चाहिए। (यहाँ श्रील प्रभुपाद सदगुरु और दीक्षा गुरु को समान बता रहे हैं।) श्रील प्रभुपाद ने कई बार कहा है कि दीक्षित होने की एक ही आवश्यकता है - उनके द्वारा दिये हुए नियमों का पालन -

‘यह दीक्षा की प्रणाली है। शिष्य सहमति देता है कि आगे से वह कोई पाप कर्म नहीं करेगा....वह वचन देता है कि गुरु के आदेशों का निर्वाह करेगा। तब, गुरु उसे अपने संरक्षण में लेता है और उसे आध्यात्मिक मुक्ति तक उठा लेता है।’
(श्रील चरितामृत मध्य, २४ . २५६,)

भक्त - औपचारिक दीक्षा कितनी महत्वपूर्ण है ?
श्रील प्रभुपाद - औपचारिक दीक्षा का मतलब है श्रीकृष्ण और उनके प्रतिनिधि के आदेशों का पालन करने की औपचारिक सहमति दी। वह औपचारिक दीक्षा है।
(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, २२/२/७३, ऑकलैंड)

श्रील प्रभुपाद : मेरा शिष्य कौन है ? सबसे पहले उसे सारे अनुशासित नियमों का पालन करना होगा।
शिष्य : जब तक कोई इनका पालन कर रहा हो, तब वह....

श्रील प्रभुपाद : तब वह ठीक है।
(श्रील प्रभुपाद, प्रातः भ्रमण, १३/६/७६, डेट्रोइट)

‘.....जब तक अनुशासन नहीं है, तब तक शिष्य का मतलब ही नहीं है। शिष्य वो जो अनुशासित हो।’
(श्रील प्रभुपाद, प्रातः भ्रमण, ८/३/७६, मायापुर)

दीक्षा के अर्थ से क्या यह निष्कर्ष सकते हैं कि गुरु को इसी धरती पर सशरीर उपस्थित रहना होता है ?

‘दीक्षा एक प्रणाली है जिससे दिव्य ज्ञान प्रकाशित होता है और पाप कर्म के फलों का नाश होता है। एक दक्ष व्यक्ति जिसे शास्त्रों का ज्ञान है इस प्रणाली को दीक्षा कहता है।’

(कृपया दीक्षा आकृति पृष्ठ ८५ देखें)
(चैतन्य चरितामृत मध्य, १५ . १०८, भावार्थ)

दीक्षा प्रणाली के अर्थ से ऐसा कुछ इंगित नहीं होता कि गुरु को शिष्य के साथ इसी धरती पर स्थित होना चाहिए। दूसरी ओर, श्रील प्रभुपाद के उपदेश एवं निजी उदाहरण स्पष्ट प्रमाणित करते हैं कि दीक्षा विधि के लिये आवश्यक तत्त्व गुरु की सशरीर उपस्थिति में लाये जा सकता है-

‘दिव्य ज्ञान की प्राप्ति में किसि प्राकृतिक अवस्था से व्यवधान नहीं आ सकता।’
(श्रीमद-भागवतम्, ७ . ७ . १, भावार्थ)

‘वक्ता की प्रत्यक्ष अनुपस्थिति से दिव्य शब्द की शक्ति में कोई कमी नहीं आ सकती।’
(श्रीमद-भागवतम्, २ . ६ . ८, भावार्थ)

अतः दीक्षा के समस्त तत्त्व-दिव्य ज्ञान, मन्त्र प्राप्ति आदि, गुरु की सशरीर उपस्थिति के बिना भी सरलता से सँपे जा सकता है।

सारांश में, निश्चित रूप से दिखाया जा सकता है कि श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में ऐसा कोई शास्त्रिक निर्देश नहीं है जिससे धरती छोड़ने के उपरान्त गुरु दीक्षा नहीं दे सकता। यह आपत्ति की जाती है कि पूर्व में परम्परा में कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। परन्तु पूर्व के उदाहरणों से सिद्धांत बनाना शास्त्रिक निर्देश नहीं है। पूर्व उदाहरण एक शास्त्रिक सिद्धांत को लागू करते वक्त उदाहरणतया काम में लिये जा सकता है। परन्तु पूर्व उदाहरण की अनुपस्थिति में शास्त्रिक सिद्धांत बदला नहीं जा सकता। अपनी परम्परा शास्त्रिक निर्देशों पर आधारित है न कि पूर्व उदाहरणों पर। यही तथ्य इस्कॉन को दूसरे गौडिय वैष्णव संस्थाओं से अलग सिद्ध करती है। भारत में ऐसे कई कट्टरपंथी स्मर्थ ब्राह्मण हैं जो श्रील प्रभुपाद की निंदा करते हैं क्योंकि श्रील प्रभुपाद रीति-रिवाजों के साथ नहीं

चले।

शास्त्रिक उदाहरण और श्रील प्रभुपाद का निजी उदाहरण सिद्ध करते हैं कि दीक्षा किसी भी तरह से गुरु की शारीरिक उपस्थिति पर निर्भर नहीं करती।

६. "इस निर्देश को लागू करने से एक प्रणाली की स्थापना हो जायेगी जिसका न तो पूर्व में उदाहरण है न ऐतिहासिक आधार। इसलिए इस प्रणाली को नकार दिया जाना चाहिए।"

६ जुलाई के पत्र को उपर्युक्त कारण से नकारा नहीं जा सकता; क्योंकि श्रील प्रभुपाद ने कई नए नियम बनाये थे- (नाम जप की संख्या ६४ से घटाकर १६ करना, विवाह करना, महिलाओं को मंदिर में रहने की

इजायत देना, टेप के द्वारा गायत्री मंत्र देना आदि।) यहाँ तक कि हमारी परम्परा के आचार्यों का विशिष्ट लक्षण है कि करीब-करीब सभी ने नए संस्कार और रीतियाँ स्थापित की हैं।

एक आचार्य होकर यह उनका अधिकार है। अपितु शास्त्रिक निर्देशों के अनुरूप ही। जैसा पहले बताया गया था, इस ग्रह पर गुरु की सशरीर अनुपस्थिति में ऋत्विक् का उपयोग कोई भी शास्त्रिक निर्देशों का उल्लंघन नहीं करता। श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में सारे जरूरी शास्त्रिक निर्देशों का वर्णन है। उनकी किताबों में ऐसा कहीं निर्देश नहीं आता कि दीक्षा के समय गुरु को उसी ग्रह पर रहना होता है। अतः यह कोई नियम नहीं है। उनके शारीरिक प्रस्थान उपरान्त ऋत्विक् का प्रयोग ब्राह्म रीति में फर्क हो सकता है, नियम में नहीं।

श्रील प्रभुपाद ने दीक्षा देने हेतु कई नई रीतियों एवं संस्कारों का उपयोग किया (कृपया पृष्ठ ४६ पर आकृति देखें) परन्तु हम उन्हें नकार नहीं देते।

यह तर्क भी दिया जा सकता है कि कुछ रीतियों में बदलाव उन्होंने अपनी पुस्तकों में संबोधित किये थे। यह सत्य है, परन्तु कई ऐसी रीतियाँ भी हैं जो उन्होंने संबोधित नहीं की। इसके अलावा, ऋत्विक् प्रणाली की अपनी किताबों में सविस्तर विवरण देने की आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि इस प्रणाली का मॉडल उन्होंने व्यवहारिक रूप से कई वर्षों तक लागू किया हुआ था। ६ जुलाई के पत्र से उन्होंने इस प्रणाली को बस अन्तिम रूप दिया था कि सशरीर अनुपस्थिति में यह प्रणाली कैसे चलेगी। श्रील प्रभुपाद ने हमें सिखाया था कि आँखें बंद करके रीतियों का पालन नहीं करना चाहिए :

‘हमारी एकमात्र रीति है कि किस प्रकार विष्णु को संतृप्त करना।
(श्रील प्रभुपाद भगवद्-गीता प्रवचन, ३०/७/७३, लंदन)

‘नहीं। रीति, धर्म, यह सब भौतिक है। यह सब उपाधियाँ हैं।’
(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, १३/३/७५०, तेहरान)

अपनी परम्परा के पूर्व आचार्यों ने क्या बिल्कुल श्रील प्रभुपाद जैसे ही आदेश दिये थे – यह तथ्य औपचारिक है। हमारा कर्तव्य सिर्फ अपने आचार्य के आदेश का पालन करना है।

अगर कोई दीक्षा प्रणाली इसलिए नकार दी जानी चाहिए क्योंकि उसका पूर्व में कोई उदाहरण नहीं मिलता, तो उस तर्क से इस्कॉन की वर्तमान गुरु प्रणाली को नकार देना चाहिए।

ऐसा कभी नहीं हुआ कि दीक्षा गुरुओं का समूह एक समिति के अधिन हो जो उनकी दीक्षा संबंधित कार्यवाहियों को निलंबित या बर्खास्त कर सकती

है। हमारे संप्रदाय में पूर्व में ऐसा कोई दीक्षा आचार्य नहीं हुआ जिसे अपनी पदवी पर दो-तिराई बहुमत से स्थापित किया गया हो और उसके उपरान्त पाप कर्मों में लिप्त पाए जाने पर गुरु-शिष्य परम्परा से हटा दिया गया हो। हम इन अनियमित प्रचलनों को नकराते हैं, इसलिए नहीं कि यह परम्परा में नहीं है, परन्तु इसलिए कि ये प्रचलन मूल रूप से श्रील प्रभुपाद के उपदेशों से विल्कुल अलग हैं और उनके अन्तिम आदेश का सीधा उल्लंघन हैं।

यह तर्क कि ऋत्विक् जैसी कोई प्रणाली भी शास्त्रों में नहीं मिलती है, यहाँ लागू नहीं होता। कुछ वैदिक नियमों के अनुसार शूद्र और महिलाओं को वात्मण दीक्षा कभी नहीं देनी चाहिए :

‘शूद्र को दीक्षा नहीं दी जा सकती....यह दीक्षा वैदिक नियमों के आधार पर नहीं दी जा रही, क्योंकि योग्य वात्मण मिलना बहुत कठिन है।’

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, २६/३/७१, बम्बई)

अतः, नियमानुसार, श्रील प्रभुपाद द्वारा अपने पाश्चात्य शिष्यों का दीक्षा नहीं देनी चाहिए थी। इन सबका जन्म न्यूनतम वैदिक वर्ण से भी निचले स्तर पर हुआ था। श्रील प्रभुपाद उच्चस्तरीय शास्त्रिक निर्देशों का पालन कर इन वैदिक नियमों को लाँघ गये। उन्होंने इन निर्देशों को इस तरह लागू किया जैसा पहले किसी ने नहीं किया था।

‘जैसे हरि को सामाजिक नियमों के अधिन नहीं लाया जा सकता, वैसे ही उनके प्रतिनिधि गुरु को भी नहीं।’

(चैतन्य चरितामृत मध्य, १०.१३६, अनुवाद व भावार्थ)

‘अतः पुरुषोत्तम भगवान एवं ईश्वर पुरी की करुणा सामाजिक नियम के अधिन नहीं आती।’

(चैतन्य चरितामृत मध्य, १०.१३७)

महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि ऋत्विक् प्रणाली पूर्ण रूप से निराली सकती है (जहाँ तक हमें मालूम है)

परन्तु वह किसी शास्त्रिक निर्देशक का उल्लंघन नहीं करती। यह श्रील प्रभुपाद की आध्यात्मिक निपुणता ही है कि वे ऐसे शास्त्रिक निर्देशों को समय और स्थिति अनुसार नये और करुणामयी तर्कों से लागू कर पाए।

शायद हमने अभी तक यह नहीं जाना है कि श्रील प्रभुपाद कितने अद्वितीय हैं। ऐसे जगद आचार्य पहले कोई भी नहीं हुए। पहले के किसी आचार्य ने यह नहीं कहा था कि उनकी पुस्तकें भविष्य के दस हजार वर्षों तक कानून की पुस्तकें होंगी। इस्कॉन जैसी संस्था पहले कोई नहीं हुई। हम इस बात पर आश्चर्य क्यों व्यक्त करें कि इस तरह के अद्वितीय व्यक्ति ने एक अलग तरह की दीक्षा प्रणाली स्थापित की?

१०. “ क्योंकि ऋत्विक् प्रणाली का ६ जुलाई १६७७ के पूर्व कोई स्पष्ट निर्देश नहीं था, अतः इसको श्रील प्रभुपाद के शारीरिक प्रस्थान उपरान्त चालू रखने का उनका उद्देश नहीं था। ”

यह आपत्ति इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि श्रील प्रभुपाद आंदोलन पर कोई नई चीज नहीं उछालेंगे। यह एक निरर्थक आपत्ति है; क्योंकि इसका मतलब यह हुआ कि गुरु के किसी भी आदेश को नकार देना चाहिए अगर वह आदेश नया हो या पूर्व आदेशों से जरा

भी भिन्न हो। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि अपने अंतिम महीनों में श्रील प्रभुपाद को अपनी संस्था संबंधित कोई भी महत्त्वपूर्ण आदेश नहीं जारी करना चाहिए थे जब तक कि हर कोई उन आदेशों से पहले से ही वाकिफ न हो।

जैसा हम पहले समझा चुके हैं, ऋत्त्विक प्रणाली नई नहीं है। ६ जुलाई के पत्र के पूर्व भी आंदोलन में दीक्षा मूल रूप से प्रतिनिधियों द्वारा ही दी गई थी। श्रील प्रभुपाद इस्कॉन के दीक्षा गुरु थे, और ज्यादातर दीक्षा संस्कार, खासतौर से अंतिम वर्षों में, टेंपल प्रेसिडेंट या कोई और प्रतिनिधि या पुजारी द्वारा किये जाते थे।

६ जुलाई १९७७ के पत्र के बाद जो भिन्न विधि उभर कर आयी वह भी नए शिष्यों को स्वीकारते वक्त श्रील प्रभुपाद की सहमति की जरूरत नहीं। जो पत्र अब तक नए शिष्यों को भेजा जाता था, उस पर श्रील प्रभुपाद के हस्ताक्षर नहीं होंगे। उनके नामों का चयन ऋत्त्विक द्वारा होगा। हाँ, यह प्रणाली अब एक अपरिचित शब्द से जुड़ गई - ऋत्त्विक।

एक प्रतिनिधि के माध्यम से एक प्रामाणिक आचार्य द्वारा दीक्षा लेना, यह अनुभव कई हजारों शिष्यों को हुआ था।

६ जुलाई का पत्र 'ऋत्त्विक' का मतलब परिभाषित करता है — 'आचार्य का प्रतिनिधि'। स्पष्टतः प्रतिनिधियों के माध्यम से दीक्षा देने के प्रणाली कतिपय 'नई' नहीं थी। इस तरह की प्रणाली का संस्था के कुछ विस्तार उपरान्त ही श्रील प्रभुपाद ने उपयोग करना प्रारम्भ कर लिया था। ६ जुलाई का पत्र सिर्फ इसको बरकरार रखता था।

यह सुनकर भारी धक्का क्यों लगा कि यह प्रणाली १४ नवम्बर १९७७ के उपरान्त भी लागू होनी थी ?

'ऋत्त्विक' शब्द कइयों को अपरिचित लगा होगा, पर यह नया नहीं था। यह शब्द और इसके साधित शब्दों का ३२ बार श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में उपयोग किया गया है। 'नया' यह था कि जो प्रणाली पिछले कई वर्षों से चल रही थी, उसको अब भविष्य में जारी रखने हेतु संशोधन करके लिखित रूप में प्रस्तुत किया गया। यह आश्चर्य की बात नहीं है, क्यों कि श्रील प्रभुपाद उस समय अपने आंदोलन को भविष्य में चलाने हेतु कई लिखित दस्तावेज जारी कर रहे थे। यह प्रबन्ध तो ऐसी प्रणाली का अनुमोदन था जो सारे भक्त सामान्य समझने लगे थे।

'नया' तो 'ऋत्त्विको' द्वारा श्रील प्रभुपाद के भौतिक एवं आध्यात्मिक शुद्ध उत्तराधिकारी रूप में रूपान्तरित होना था। इस ईजाद से इतना गंभीर आघात लगा कि कई सौ शिष्य आंदोलन छोड़ गये। हजारों ने बाद में छोड़ दिया।

सारांश में — हमने यहाँ दर्शा दिया है कि श्रील प्रभुपाद के सशरीर प्रस्थान उपरान्त ऋत्त्विक प्रणाली को रोकने के लिए कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। न ही ऋत्त्विक से दीक्षा गुरु में रूपान्तरित होने का प्रमाण है। यानी संशोधन (अ) एवं

(ब) गलत है। अगर संशोधन (अ) एवं (ब) की सहमती का कोई बहुत प्रभावशाली अप्रत्यक्ष प्रमाण हो तो भी प्रत्यक्ष अग्रणी होता है। वैसे हम दिखा चुके हैं कि कोई अप्रत्यक्ष प्रमाण भी नहीं है। अतः -

(क) एक आदेश प्रेषित हुआ जो समस्त आंदोलन का पालन करना था — प्रत्यक्ष प्रमाण।

(ख) स्वयं इस आदेश और संबंधित निर्देशों को परखने से ऋत्त्विक प्रणाली का ही प्रमाण मिलता है — प्रत्यक्ष प्रमाण।

(ग) ऐसा कोई अप्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है कि श्रील प्रभुपाद ने अपने सशरीर प्रस्थान उपरान्त ऋत्त्विक प्रणाली को रोकने के लिए निर्देशक दिये थे।

(घ) इस अन्तिम आदेश का शास्त्रों, दूसरे निर्देश, आदेश से संबंधित विशेष स्थिति या पृष्ठ भूमि, आदेश का प्रसंग या और कुछ में ऐसा प्रमाण नहीं है जिससे श्रील प्रभुपाद के सशरीर प्रस्थान उपरान्त ऋत्त्विक प्रणाली को रोक चाहिए। आश्चर्य तो यह है कि आपत्तियों को परखने से ऋत्त्विक प्रणाली के ही अनुमोदन का अप्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

उपर्युक्त विश्लेषण की दृष्टि से, हम विनम्रता से कहना चाहेंगे कि श्रील प्रभुपाद के दिक्षा संबंधी अंतिम आदेश १४ नवम्बर १६७७ को अवरूद्ध करना कम से कम एक मनाहत और गैरकानूनी कार्य तो है ही। इन गलत संशोधनों (अ) एवं (ब), जो इस्कॉन की वर्तमान गुरु प्रणाली का आधार है, के अनुमोदन के लिए हमें कोई प्रमाण नहीं मिलता। श्रील प्रभुपाद के इस प्राथमिक निर्देश का पालन करना उनके समस्त शिष्यों, अनुयायियों और सेवकों का प्रथम कर्तव्य है।

इस काम में सहायता देने के लिए अब हम २८ मई के वार्तालाप ले परखेंगे। साथ में हम उन संबंधित आपत्तियों को भी देखेंगे जो भ्रम पैदा करती हैं।

जी.बी.सी. के अनुसार ६ जुलाई के आदेश में दोनो संशोधन (अ) एवं (ब) करने का एकमात्र कारण है ६ मई, १९७७ को वृन्दावन में हुआ वार्तालाप। वे संशोधन हैं :

संशोधन (अ) : श्रील प्रभुपाद द्वारा इन प्रतिनिधियों या ऋत्विक् की नियुक्ति केवल तत्कालीन थी और श्रील प्रभुपाद के देह त्यागने पर इसका अंत होना था।

संशोधन (ब) : अपने प्रतिनिधित्व या ऋत्विक् का दायित्व त्याग कर ये ऋत्विक् अपने आप दीक्षा गुरु बन जाएँगे। दीक्षा देकर वे लोगों को अपना शिष्य बनाएँगे, श्रील प्रभुपाद का नहीं।

अतः इस भाग में २८ मई को हुए वार्तालाप को बारीकी से देखा जायेगा कि क्या इस वार्तालाप से दोनों संशोधन करने का पर्याप्त कारण बनता है।

जी.बी.सी. का पूर्ण प्रमाण केवल यही वार्तालाप है। तो भी आश्चर्य की बात तो यह है कि इस एक वार्तालाप की चार प्रतिलिपियाँ हैं। यह निम्नलिखित चार लेखों में सम्मिलित है :

१६८५ : अण्डर माई आर्डर (रविन्द्र स्वरूप दास)

१६६० : इस्कॉन जर्नल (जी.बी.सी.)

१६६४ : कन्टीन्यूइंग दी परम्परा (शीवराम स्वामी)

१६६५ : गुरुस एण्ड इनिशिएशन इन इस्कॉन (जी.आई.आई.) (जी.बी.सी.)

एक ही वार्तालाप की चार अलग-अलग प्रतिलिपियों से इसकी प्रामाणिकता पर कोई खडे हो जाते हैं, जैसे-ठीक प्रतिलिपि कौनसी है ? अलग-अलग प्रतिलिपियों क्यों हैं ? क्या ये प्रतिलिपियाँ कई वार्तालापों को सम्मिलित कर बनाई गई हैं ? क्या यह टेप ही कई वार्तालापों को जोड़ कर बनाया हुआ है ? क्या इस वार्तालाप के अलग-अलग टेप जारी किये गये हैं ? कौनसा सही है ?

इन सब प्रश्नों से इस वार्तालाप की प्रामाणिकता पर ही शक हो जाता है ? हम कैसे ६ जुलाई के पत्र के स्पष्ट हस्ताक्षरयुक्त आदेश को इस संदेहास्पद प्रमाण से बदल सकते हैं ?

तो भी इस वार्तालाप की चारों प्रतिलिपियों को सम्मिलित कर हम इस प्रमाण को परखते हैं —

- (१) सतस्वरूप दास गोस्वामी : अब हमारा अगला प्रश्न भविष्य की दीक्षाओं पर है, विशेषतया तब जब
- (२) आप हमारे बीच नहीं रहेंगे। हम जानना चाहते हैं कि पहली और दूसरी
- (३) दीक्षाओं का किस प्रकार प्रबन्ध किया जायेगा।
- (४) श्रील प्रभुपाद : हाँ। मैं तुमसे कुछ को अनमोदित करूँगा। जब यह खत्म हो
- (५) जायेगा तब मैं तुमसे कुछ को ऑफिशिएटिंग आचार्य के कार्य के
- (६) लिए अनुमोदित करूँगा।
- (७) तमाल कृष्ण गोस्वामी : क्या उसे ऋत्विक् आचार्य कहा जायेगा ?

- (८) श्रील प्रभुपाद : ऋत्त्विक । हाँ ।
- (९) सतस्वरूप दास गोस्वामी : (फिर) उनका क्या संबंध होता है जो व्यक्ति दीक्षा देता है और.....
- (१०) श्रील प्रभुपाद : वह गुरु है । वह गुरु है ।
- (११) सतस्वरूप दास गोस्वामी : पर वह आपकी ओर से करता है ।
- (१२) श्रील प्रभुपाद : हाँ । षह औपचारिकता है; क्योंकि मेरी उपस्थिति मे किसी को भी
- (१३) गुरु नही बनना चाहिए,इसलिए मेरी ओर से, मेरी आज्ञा पर,'अमार
- (१४) आज्ञाय गुरु होना', (वह) होगा वस्तुस्थिति में गुरु । पर मेरी आज्ञा
- (१५) उपरान्त ।
- (१६) सतस्वरूप दास गोस्वामी : तो वे (वह) आपके भी शिष्य माने जायेंगे?
- (१७) श्रील प्रभुपाद : हाँ । वे शिष्य है, (पर) (क्यों) माने.... कौन ?
- (१८) तमाल कृष्ण गोस्वामी : नही । यह पूछ रहे है कि यह ऋत्त्विक आचार्य,वे औपचारिकतापूर्वक
- (१९) दीक्षा दे रहे है.....(उनके) उन व्यक्तियों को जिन्हे ये दीक्षा देंगे,वे
- (२०) किनके शिष्य होंगे ।
- (२१) श्रील प्रभुपाद : वे उसके शिष्य होंगे ।
- (२२) तमाल कृष्ण गोस्वामी : वे उसके शिष्य होंगे ।
- (२३) श्रील प्रभुपाद : जो दीक्षा दे रहा है.....(उसके) (वह) परम शिष्य ।
- (२४) सतस्वरूप दास गोस्वामी : (ठिक है)
- (२५) तमाल कृष्ण गोस्वामी : (अब समझ गये)
- (२६) तमाल कृष्ण गोस्वामी : (अब आगे चलते है)
- (२७) सतस्वरूप दास गोस्वामी : अब हमारा अगला प्रश्न है....
- (२८) श्रील प्रभुपाद : जब मै आदेश दूँ 'तूम गुरु बनो',वह सामान्य गुरु बनेगा । बस । वह
- (२९) मेरे शिष्य बनेगा । (बस)

जैसा हम पहले बता चुके है, न तो ६ जुलाई का पत्र और न ही दूसरा कोई दस्तावेज इस वार्तालाप का उल्लेख करता है । यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है क्योंकि जी०आई०आई० मे बतलाया गया है कि ६ जुलाई का पत्र समजझने के लिए यह संक्षिप्त वार्तालाप अति आवश्यक है ।

विश्व भर मे फैले अपने आंदोलन को श्रील प्रभुपाद इस तरह से आदेश नही देते थे । यानी पुराने चार्तालापों को ढूँढ कर अपूर्ण लिखित निर्देशों का समजझना ।

हम जानते है कि यह विषय १० हजार साल तक चलने वाले संकीर्तन आन्दोलन में दिक्षा प्रदान करने की प्रणाली जैसा महत्त्वपूर्ण विषय है । साथ में श्रील प्रभुपाद जानते थे कि इसी विषय पर गौड़िय मठ टूटा था । इन सब तथ्यों को ध्यान मे रखकर विश्वास नही होता कि वे इस विषय को इस अभिज्ञता से संभालेंगे । परन्तु वर्तमान की जी.वी.सी. धारणा के अनुसार श्रील प्रभुपाद ने यही किया था । चलिए अब हम वार्तालाप को पंक्ति-दर-पंक्ति देखे और फिर उन पंक्तियों को भी देखे जो जी.वी.सी. के अनुसार ६ जुलाई के आदेश को बदलती है ।

पंक्ति १ से ३ - यहाँ सतस्वरूप दास गोस्वामी ने श्रील प्रभुपाद से एक विशेष प्रश्न पूछा कि भविष्य में दीक्षा कैसे मिलेगी – विशेषतया जब आप हमारे बीच नहीं रहेंगे। जो भी उत्तर श्रील प्रभुपाद देंगे वह इस विषय से ही संबंधित होगा, क्योंकि सतस्वरूप उसी समय परिधि के बारे में पूछ रहे हैं यानी ‘जब आप हमारे बीच नहीं रहेंगे’।

पंक्ति ४ से ८ - यहाँ श्रील प्रभुपाद, सतस्वरूप दास गोस्वामी के प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं। उन्होंने कहा। कि वे कुछ शिष्यों को ‘आफिशिएटिंग आचार्य’ या ‘ऋत्त्विक’ नियुक्त करेंगे। यह देने के बाद वे चुप ही गये। इस विषय पर वे और कुछ नहीं बोले। नहीं उन्होंने इस उत्तर को और समझाना चाहा। इसका अर्थ यह हुआ कि यही उनका पूर्ण उत्तर था। इस धारणा के दो विकल्प हो सकते हैं –

१. श्रील प्रभुपाद ने जानबुझकर इस प्रश्न का उत्तर दिया।

२. या उन्होंने सतस्वरूप दास गोस्वामी का प्रश्न ठीक से नहीं सुन और यह समझ बैठे कि वे पूछ रहे हैं कि अभी जब वे धरती पर हैं तब क्या करना है।

श्रील प्रभुपाद का कोई भी शिष्य विकल्प १ को नहीं मानेगा। विकल्प २ अगर ठीक होता तो यह वार्तालाप ६ जुलाई के पत्र को बदल नहीं सकता; क्योंकि तब इस वार्तालाप में भविष्य की दीक्षाओं के लिए कुछ नहीं कहा गया होगा।

कई बार तर्क दिया जाता है कि पूर्ण उत्तर अलग-अलग भागों में बाकी के वार्तालाप में उभर कर आयेगा। इस तर्क के साथ मुश्किल यह है कि श्रील प्रभुपाद तब ही ठीक उत्तर दे पायेंगे अगरः

- किसी ने और प्रश्न पूछा।

- भाग्यवश उन्होंने सही प्रश्न पूछ लिए।

इस तरह उत्तर देने का यह एक विलक्षण अंदाज होगा जो श्रील प्रभुपाद का स्वभाव नहीं था। विशेषतया अपने विश्वव्यापी आंदोलन को निर्देश देते वक्त तो नहीं। जी.वी.सी. के अनुसार, जो आदेश केवल चार महीने चलना था उसे अपने सम्पूर्ण आन्दोलन को पत्र द्वारा आदेश जारी करने के लिए श्रील प्रभुपाद ने इतनी मुश्किलों से किया वही जो निर्देश दस हजार वर्ष चलना था उसे इस प्रकार अस्पष्ट रूप से एक निजी वार्तालाप में जारी कर दिया।

इस तरह स्पष्ट ही जाता है कि इस वार्तालाप से संशोधन (अ) एवं (ब) नहीं किये जा सकत। श्रील प्रभुपाद से पूछा गया कि दीक्षा कैसे दी जायेगी, विशेषतया आपके जाने के उपरान्त तो वे उत्तर देते हैं कि वे ऋत्त्विक मनोनीत करेंगे। यह उत्तर जी.वी.सी. के प्रस्तावित संशोधनों का खंडन करता है और इस तथ्य को और मजबूती देता है कि ६ जुलाई का आदेश ‘इस समय से’ लागू होना था।

पंक्ति ६ से १० – यहाँ सतस्वरूप दास गोस्वामी पूछते हैं कि दीक्षा देने वाले का क्या संबंध है। सतस्वरूप दास गोस्वामी के प्रश्न को पूरा

करने से पहले ही श्रील प्रभुपाद तत्काल उक्त देते हैं, 'वह गुरु है'। परिभाषा के अनुसार, क्योंकि ऋत्त्विक एक गुरु ही नहीं सकते, अतः श्रील प्रभुपाद जो असल में दीक्षा दे रहे हैं यानी वे खुद को ही दीक्षा पाने वालों का 'गुरु' बता रहे हैं। यह ६ जुलाई के पत्र से स्पष्ट हो जाता है जहाँ तीन बार कहा गया है कि दीक्षा पाने वाले श्रील प्रभुपाद के शिष्य होंगे।

खुद बार यह अद्भुत तर्क दिया जाता है कि श्रील प्रभुपाद कहते हैं, 'वह गुरु है' वे ऋत्त्विक के बारे में कह रहे हैं। यह मूक एक तर्क ही है क्योंकि श्रील प्रभुपाद ने कुछ ही समय पहले ऋत्त्विक की परिभाषा दी है- 'आफिशिएटिंग आचार्य' यानी किसी प्रकार का संस्कार करने वाला पुजारी। ६ जुलाई के पत्र में श्रील प्रभुपाद स्पष्टतया बतलाते हैं कि दीक्षा संस्कार ये पुजारी करेंगे। द्यो श्रील प्रभुपाद के नए शिष्यों को अध्यात्मिक नाम देंगे और गायत्री दीक्षा में यज्ञोपवीत पर जाप करेंगे। सब श्रील प्रभुपाद की ओर से। बस। यहाँ कही भी दीक्षा गुरु बनकर अपने शिष्य बनाने के बाबत नहीं बोला गया है। पत्र में ऋत्त्विक की परिभाषा- 'आचार्य के प्रतिनिधि' दे रखी है। उन्हें आचार्य की ओर से कार्य करना था न कि खुद आचार्य बन जाना था। अगर वे गुरु ही थे, तो शुरू से ही श्रील प्रभुपाद ने उन्हें गुरु क्यों नहीं बोला ? क्यों 'ऋत्त्विक' बोलकर भ्रम पैदा किया ?

श्रील प्रभुपाद जब भी अपने आचार्य होने संबंधित आध्यात्मिक एवं प्रबंधन विषयों की चर्चा करते थे तब वे तृतीय व्यक्ति के व्यवहार में बोलते थे। यहाँ इसी तरह हुआ; क्योंकि सतस्वरूप दास गोस्वामी ने अपना प्रश्न उसी अंदाज में पूछा था।

अतः इस वार्तालाप से तभी कुछ मतलब निकलता है जब श्रील प्रभुपाद ही 'गुरु' है, जो नये शिष्यों को ऋत्त्विक की ओर से दीक्षा दे रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद का उत्तर जहाँ पूर्णयता स्पष्ट है वहाँ प्रश्न वाले के दिमाग में लगेता है थोड़ा भ्रम था। ग्यारवी पंक्ति में सतस्वरूप दास गोस्वामी 'ऋत्त्विक' समझ रहे हैं वहाँ श्रील प्रभुपाद 'वह' मतलब खुद को तृतीय व्यक्ति के रूप में संबोधित कर रहे हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि केवल श्रील प्रभुपाद ही समस्त प्रणाली में दीक्षा देने वाले हैं। अपने शिष्यों के उपर्युक्त भ्रम के बाद भी अगले उत्तर में सतस्वरूप दास गोस्वामी के अंदाज से श्रील प्रभुपाद मेल खाने लगते हैं।

पंक्ति १२ से १५- जी.आई.आई. के अनुसार यह संशोधन (अ) का कारण है। यह समझने से पहले कि ये पंक्तियाँ कैसे इस संशोधन का प्रमाण दे सकती हैं, हमें पंक्ति १ से ८ का विश्लेषण फिर से याद कर लेना चाहिए।

अगर पंक्ति १२ से १५ संशोधन (अ) का प्रमाण है तो ये पंक्ति १ से ८ के विपरित है जहाँ श्रील प्रभुपाद ने पहले ही बता दिया था कि विशेषतया उनके प्रस्थान के उपरान्त ऋत्त्विक मनोनीत किये जायेंगे। इसलिए अगर पंक्ति १२ से १५ द्वारा संशोधन (अ) प्रामाणिक हो जाता है तो इसका मतलब यह होगा कि श्रील प्रभुपाद

खुद अपने कथन का खंडन कर रहे हैं। विपरीतात्मक कथनों से यह वार्तालाप एक प्रमाण के रूप में बेकार हो जाता है। अतः केवल ६ जुलाई का पत्र ही भविष्य की दीक्षा प्रणाली लागू करने का प्रमाण रह जाता है।

पर क्या अपने प्रस्थान उपरान्त ऋत्त्विक प्रणाली को रोकने

का यहाँ प्रमाण मिलता है ?

१२ से १५ पंक्ति को एक बार फिर पढ़ने से इतना तो ज्ञात हो जाता है कि अपनी उपस्थिति में ऋत्विक् को कार्य करना ही है; क्योंकि उनकी उपस्थिति में वे कभी गुरु नहीं बन सकते। यहाँ भी श्रील प्रभुपाद वही नियम दोहरा रहे हैं जो वे महत्त्वाकांक्षी शिष्यों के सम्मुख दोहराते थे कि गुरु की उपस्थिति में उनकी ओर से ही कार्य करना चाहिए। परन्तु श्रील प्रभुपाद ऐसा कुछ नहीं कहते कि उनके सशरीर प्रस्थान उपरान्त 'उनकी ओर से' कार्य करना रोक देना है। वे यह भी नहीं कहते कि 'उनकी ओर से' कार्य करना केवल उनकी सशरीर उपस्थिति में ही होगा। वरन उन्होंने अपनी सशरीर उपस्थिति को 'उनकी ओर से' कार्य करने से विल्कुल नहीं जोड़ा है। अपितु यहाँ ऋत्विक् को 'गुरु नहीं बनने' से जोड़ा गया है।

दूसरे शब्दों में, इस वार्तालाप के समय तक, जिस कारण से वे दीक्षा गुरु नहीं बन सकते थे, वह था श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति, परन्तु यह एकमात्र कारण नहीं था। दूसरे कारण अगली पंक्तियों से स्पष्ट हो जायेंगे।

१३ वी पंक्ति में श्रील प्रभुपाद कहते हैं — 'मेरे आदेश पर'। १३ वी पंक्ति में फिर इसको दोहराते हैं — 'परन्तु मेरे आदेश से' और २८ वी पंक्ति में भी — 'जब मैं आदेश दूँ'। जैसा हम पहले बतला चुके हैं, गुरु के विशेष आदेश द्वारा ही खुद गुरु बना जा सकता है; और यह ही आदेश होता तो श्रील प्रभुपाद क्यों कहते — 'जब मैं आदेश दूँ?' जी.वी.सी. के अनुसार यह ही वस्तुतः आदेश है; अगर ऐसा होता तो श्रील प्रभुपाद ने निश्चित ही कुछ ऐसा कहा होता 'अब मैं तुम्हें आदेश देता हूँ, जैसे ही मैं नहीं रहूँ, तो तुम ऋत्विक् छोड़ खुद दीक्षा गुरु बन सकते हो'।

परन्तु, जैसा दिखता है, इस तरह का कोई भी कथन २८ मई के वार्तालाप में नहीं मिलता।

अतः पंक्ति १२ से १५ में ऐसा कुछ नहीं है जिससे पंक्ति १ से ८ में श्रील प्रभुपाद द्वारा दिये गये स्पष्ट कथन को बदला जाये; पंक्ति १ से ८ का मतलब अब भी स्पष्ट दिखता है। और ६ जुलाई का आदेश अब भी बदला नहीं जा सकता है।

पंक्ति १२ से १५ से जो स्पष्ट होता है वह यह कि ऋत्विक् प्रणाली श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति में चलने ली। पर ऐसा कही नहीं लिखा कि केवल सशरीर उपस्थिति में ही चलनी चाहिए। ६ जुलाई कप पत्र में 'इस समय से' शब्द सप्त पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि ऋत्विक् प्रणाली आगे भी चलती रहनी थी। 'इस समय से' का मतलब होता है इस समय से आगे। श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति या अनुपस्थिति से कुछ फर्क नहीं पड़ता।

हम आगे पढ़ते हैं -

पंक्ति १६ से १७- आश्चर्यजनक रूप से अब सतस्वरूप दास गोस्वामी का प्रश्न- 'तो वे आपके भी शिष्य माने जायेंगे' प्रथम पुरुष में ही है। श्रील प्रभुपाद उत्तर देते हैं, 'हाँ वे शिष्य हैं....'। इस प्रकार वे एक बार फिर भविष्य के शिष्यों को अपना बताते हैं। वैसे यह स्पष्ट नहीं है कि श्रील प्रभुपाद आगे क्या कहने वाले थे, तो भी उत्तर का पहला भाग स्पष्ट है जिसमें उनसे एक सीधा प्रश्न पूछा गया था और उन्होंने उत्तर दिया, 'हाँ'।

अगर जी.वी.सी. संशोधन (अ) एवं (ब) को प्रमाणित बताना चाहती थी तो श्रील प्रभुपाद को कुछ इस तरह से उत्तर देना था, 'नहीं, वे मेरे शिष्य नहीं हैं।' जो श्रील प्रभुपाद आगे कहना चाह रहे थे, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है; क्योंकि अब किसी को मालूम नहीं चल सकता। हम केवल

इतना जानते हैं कि जब उनसे पूछा गया कि क्या भविष्य में शिष्य होंगे तो उन्होंने उत्तर दिया, 'हाँ'।

पंक्ति १८ से २१- तमाल कृष्ण गोस्वामी को लगा कि कुछ भ्रम हो रहा है अतः उन्होंने श्रील प्रभुपाद को बीच में टोका। वे सत्स्वरूप दास गोस्वामी के प्रश्न को और स्पष्ट करवाना चाह रहे थे। उन्होंने पूछा कि ऋत्तिक जब दीक्षा देते हैं तब शिष्य किनके शिष्य होंगे। पुनः श्रील प्रभुपाद कहते हैं, 'वे उसके शिष्य होंगे'। कृपया ध्यान दीजिए कि प्रश्न तृतीय प्ररूप में था अतः श्रील प्रभुपाद ने भी अपना उत्तर तृतीय पुरुष में ही दिया। अतः यहाँ भी वे अपने आपको ही संबोधित कर रहे हैं क्योंकि ऋत्तिक अपनी परिभाषानुसार खुद के शिष्य नहीं बना सकते। इसका प्रमाण यह है कि श्रील प्रभुपाद ('उसके शिष्य....जो दीक्षा हो रहा है') एकवचन में उत्तर दे रहे हैं जबकि प्रश्न बहुवचन में था (ये ऋत्तिक आचार्य)।

कई बार यह भी तर्क दिया जाता है कि तमाल कृष्ण गोस्वामी ने इस तरह से प्रश्न पूछा जिससे यह स्पष्ट हो गया कि भविष्य में यह ऋत्तिक दीक्षा गुरु बन जायेंगे। परन्तु श्रील प्रभुपाद ने कभी भी ऋत्तिक की कार्य पद्धति में बदालाव का जिक्र ही नहीं किया है; अतः वे हर समय ऋत्तिक का ही कार्य करेंगे और वे कभी अपने शिष्यों के दीक्षा गुरु नहीं बन सकते।

पंक्ति २२ से २३- तमाल कृष्ण गोस्वामी श्रील प्रभुपाद का उत्तर फिर से दोहराते हैं और श्रील प्रभुपाद आगे कहते हैं, 'जो दीक्षा दे रहा है उसके परम-शिष्य'।

यह तर्क दिया जाता है कि यहाँ श्रील प्रभुपाद ऋत्तिक को संबोधित कर रहे थे। इसलिए हम 'उसके' को 'ऋत्तिक' से प्रतिस्थापित करके देखते हैं : (केवल पंक्ति २० से २३) :

तमाल	- वे उनके शिष्य होंगे ?
श्रील प्रभुपाद	- वे (ऋत्तिक) के शिष्य होंगे ।
टमाल	- वे (ऋत्तिक) के शिष्य होंगे ।
श्रील प्रभुपाद	- (ऋत्तिक) दीक्षा दे रहा है...(ऋत्तिक) के परम-शिष्य ।

ऋत्तिक की परिभाषा होती है - 'पुजारी', जो किसी तरह का संस्कार करता है या किसी संस्कार में किसी का प्रतिनिधि होता ही। अतः 'ऋत्तिक के शिष्य' एवं 'ऋत्तिक के परम शिष्य' असाधारण रूप से गलत उपयोग है।

पंक्ति २८ से २६ — श्रील प्रभुपाद इस वार्तालाप के अंत में फिर कहते हैं कि उनके आदेश के उपरान्त ही कोई गुरु है। तब नये शिष्य उनके शिष्य ही होंगे।

इस 'शिष्य के शिष्य' को बहुत उछाला गया है। कई लोग इसको प्रमाण मानते हैं कि यहाँ श्रील प्रभुपाद ने अपने शिष्यों को दीक्षा गुरु बनने का आदेश दे दिया। पर इस शब्द के पहले का भाग स्पष्ट दर्शाता है कि श्रील प्रभुपाद यहाँ सिर्फ एक नियम बता रहे हैं कि 'जब' मैं आदेश दूँ तब कोई सामान्य गुरु बन सकता है। तब उसका शिष्य उनका परम शिष्य हो सकता है।

यह सब स्पष्ट है। पर असल में गुरु बनने का आदेश कहाँ ? निश्चित रूप से २८-२६ पंक्तियों में नहीं है और न ही संपूर्ण वार्तालाप में।

असल में २८ मई का वार्तालाप किसी को भी कुछ भी बनने का कोई भी आदेश नहीं दे रहा है। यहाँ श्रील प्रभुपाद सिर्फ यह बता रहे हैं कि भविष्य

में वे अपने कुछ शिष्यों को ऋत्विक् नियुक्ति करेंगे। गुरु-शिष्य संबंध के जो प्रश्न वार्तालाप के मध्य में पूछे जा रहे थे केवल एक आध्यात्मिक नियम से संबंधित थे न कि व्यावहारिक रूप से क्या होगा। अतः वे बतलाते हैं कि अगर वे गुरु बनने का आदेश देते हैं तो क्या होगा। इसके उपरान्त ७ जुलाई को प्रथम बार उन्होंने कोई आदेश जारी किया। वह था 'ऋत्विक्' बनने का। जिसे ६ जुलाई के हस्ताक्षरयुक्त पत्र से औपचारिक रूप दिया गया। और जैसा इस पत्र को देखकर साफ समझ आ जाता है, यह ग्यारह ऋत्विक् कभी भी दीक्षा गुरु नहीं बन सकते थे और न ही कि ऋत्विक् प्रणाली कभी रोक दी जानी थी।

२८ मई के हमारे विस्तृत विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि जी.वी.सी. यहाँ सिर्फ एक टेढ़ा बेहूदा तर्क दे रही है। ६ जुलाई के पत्र के संशोधन (अ) एवं (ब) के प्रमाणस्वरूप २८ मई के वार्तालाप को प्रस्तुत किया जाता है कि 'आदेश' यहाँ है। परन्तु, २८ मई के वार्तालाप को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ 'आदेश' नहीं दिया जा रहा, अपितु 'जब आदेश दिया जायेगा तब क्या होगा' का ब्यौरा है। क्या 'आदेश' और 'जब मैं आदेश दूँगा' एक ही है। 'जब मैं आदेश दूँगा' अगर ६ जुलाई का पत्र है तो उसमें तो ग्यारह शिष्यों को ऋत्विक् बनने का आदेश दिया जा रहा है। तो हम जी.वी.सी. से फिर यह प्रश्न पूछ सकते हैं, दीक्षा गुरु बनने का 'आदेश' कहाँ है ?

२८ मई के वार्तालाप को एक प्रभावशाली प्रमाण मानने में सबसे मुश्किल इस कारण आती है कि यह जानकारी उन भक्तों को मालूम ही नहीं थी जिन्हें बाद के संशोधनों को स्वीकारने को कहा गया था।

अगर यह सही भी होता कि २८ मई के वार्तालाप में ऐसी कुछ जानकारी होती जो ६ जुलाई के पत्र में कुछ संशोधन कर सकती थी तो उसे इस पत्र में जरूर संबोधित किया गया होता। आश्चर्यजनक तर्क तो यह दिया जाता है कि संपूर्ण जी.वी.सी. के अनुसार उनका कार्य केवल श्रील प्रभुपाद की उपस्थिति तक ही था।

दूसरे शब्दों में, जिस विषय पर श्रील प्रभुपाद से पूछा ही नहीं गया था, उस विषय पर उन्होंने स्पष्ट निर्देश दिये और फिर उसे संपूर्ण आंदोलन को एक दस्तावेज के रूप में भेजा। और जिस विषय पर पूछा गया था उसे

उन्होंने अस्पष्ट तरीके से २८ मई के वार्तालाप में ओर इस विषय के अंतिम आदेश में यानी कि ६ जुलाई के पत्र में संबोधित ही नहीं किया।

हम ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं देखते जिसमें श्रील प्रभुपाद ने संपूर्ण संस्था को निम्नलिखित तरीकों से संबोधित किया था :

(क) महत्त्वपूर्ण निर्देश जारी करना जो विषय को संबोधित ही नहीं करते।

(ख) जानबूझकर नई प्रणालियों से संबोधित महत्त्वपूर्ण जानकारी को छुपा लेना।

यह तर्क कि श्रील प्रभुपाद को भविष्य की दीक्षा विधि के बारे में जानकारी देने की जरूरत ही नहीं थी। क्योंकि इसे वे अपनी पुस्तकों और प्रवचनों में

विस्तृत रूप से समझा चुके थे, इसका प्रतिउत्तर हम आपत्ति ७ में दे चुके हैं।

२८ मई के वार्तालाप में उपयोग में लिये गये 'अमार आज्ञाया गुरु हाना' श्लोक को जी.आई.आई.मे संशोधन (अ) एवं (ब) का एक कारण बना रखा है। इस धारणा के अनुसार ऋत्विक् बनने का आदेश इस श्लोक के उपयोग के कारण दीक्षा गुरु बनने का आदेश हो जाता है। परन्तु श्रील प्रभुपाद ने बस यही कहा है :

'जो गुरु के आदेश को समझता है, वही परम्परा,वह ही गुरु बन सकता है। इसलिये मैं तुमसे कुछ को चुनूँगा।'

(२८ मई का वार्तालाप)

यहाँ निम्नलिखित बातें समझने की हैं :

(क) गुरु का कौनसा आदेश था जिसको उन्हें समझना था ? - ऋत्विक् बनन (' मैं तुमसे कुछ को ऑफिशिएटिंग आचार्य का कार्य करने के लिए नियुक्त करूँगा ')

(ख) अंत में उन्हें किस कार्य के लिए चुना गया था ? ऋत्विक् का कार्य करने के लिए (कृपया परिशिष्ट के ६ जुलाई के पज को देखें।)

(ग) और अपने गुरु के आदेशों का पालन करके वे किस तरह के गुरु बनते थे - जैसा हम पहले विश्लेषण कर चुके हैं। श्री चैतन्य के ' गुरु बनो ' के आदेश का मतलब है जो भी इस आदेश का विश्वस्नीय ढंग से पालन करता है वह शिक्षा गुरु है।

जी.आई.आई.मे असामान्य प्रस्तावना है कि गुरु के आदेश पर ऋत्विक् बनने से वह अपने आप ही दीक्षा गुरु बन जाता है।

इस तर्क के अनुसार जो भी अपने गुरु के कोई भी आदेश का पालन कर लेता है वह अपने आप ही दीक्षा गुरु बन सकता है। परन्तु जी.आई.आई. में इस तर्क का प्रमाण ही वही दे रखा है। जैसा पहले दिखलाया जा चुका है, 'अमार आज्ञाया' श्लोक हर एक को केवल शिक्षा गुरु बनने का आदेश दे रहा है। ('बेहतर होगा कि कोई शिष्य न बनाओ')।

निष्कर्ष में -

(क) ६ जुलाई १६७७ को श्रील प्रभुपाद ने ११ ऋत्विक् नियुक्त किये,जिनका कार्य था प्रथम और द्वितीय दीक्षा संस्कार 'इस समय से' करना।

(ख) २८ मई के वार्तालाप में ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे ६ जुलाई के आदेश को बदला जाए,जैसे कि ऋत्विक् की नियुक्ति श्रील प्रभुपाद

के तिरोभाव के उपरान्त रूक जाएगी।

(ग) २८ मई के वार्तालाप में ऐसा भी प्रमाण नहीं है जिससे श्रील प्रभुपाद के तिरोभाव उपरान्त यह ऋत्विक् अपने आप ही दीक्षा गुरु बन जाते थे। अतः ६ जुलाई के पज को उपरोक्त तरीके से भी नहीं बदला जाना चाहिए था।

(घ) २८ मई के वार्तालाप में जो एक तथ्य स्पष्ट स्थापित होता है वह है ऋत्विक् का कार्य श्रील प्रभुपाद के तिरोभाव उपरान्त जारी रहना था।

महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि एक इसी वार्तालाप की चार भिन्न-भिन्न प्रतिलिपियाँ और जी.बी.सी. के चार अलग-अलग 'अधिकारिक' अनुवाद हैं। कई भक्त मानते हैं कि केवल इसी कारण से टेप को निर्णायक प्रमाण नहीं माना चाहिए। अगर पाठक का भी यही दृष्टिकोण है तो उन्हें ६ जुलाई के पत्र तक ही सीमित रहना चाहिए और उसे इस विषय का अन्तिम आदेश मानना चाहिए; क्योंकि वह स्पष्ट लिखा हुआ एक हस्ताक्षरयुक्त पत्र जिसे संपूर्ण आंदोलन को भेजा गया था। एक न्यायालय में तो यह पत्र ही प्रमाणिक माना जायेगा; क्योंकि हस्ताक्षरयुक्त लिखित आदेश एक टेप से ज्यादा प्रमाणिक माना जाता है। तो भी इस टेप का यहाँ हमने इतना विश्लेषण इसलिये किया है क्योंकि जी.बी.सी. ने संशोधन (अ) एवं (ब) के लिए यही एक प्रमाण प्रस्तुत किया है।

उपरोक्त विश्लेषण द्वारा संशोधन (अ) एवं (ब) को नकार जाता है। ये संशोधन ही जी.बी.सी. की वर्तमान पद्धति के आधार हैं पर हमें इनको प्रमाणित साबित करने का कोई सबूत नहीं मिला है। अतः ६ जुलाई के पत्र में दिये गए आदेश ही श्रील प्रभुपाद द्वारा दिये गये दीक्षा संबंधित अन्तिम आदेश है। इसलिए इन्हीं का पालन करना होगा।

अब हम कुछ संबंधित आपत्तियों को देखेंगे।

१. “ श्रील प्रभुपाद ने ‘ऋत्त्विक’ शब्द का प्रयोग अपनी पुस्तकों में नहीं है। ”

(क) ‘ऋत्त्विक’ (यानी पुजारी) एवं इससे उद्भूत शब्द ३२ बार श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में संबंधित है। यहाँ तक कि ‘दीक्षा’ और इससे उद्भूत ४२ बार ही संबोधित है। इससे जाहिर होता है कि ‘ऋत्त्विक’ पुजारियों का संस्कारों में उपयोग श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में पूर्णतया अनुमोदित है :

ऋत्त्विक	० ४.६.१/४.७.१६/५.३.२/५.३.३/५.४.१७/७.३.२०/८.२०.२२/६.१.१५
ऋत्त्विक	० ४.५.७/४.५.१८/४.७.२७/४.७.४५/४.१३.२६/४.१६.२७/४.१६.२६/५.३.४/ ५.३.१५/५.३.१८/५.७.५/८.१६.५३/८.१८.२१/८.१८.२२/६.४.२३/६.६.३
ऋत्विजम्	० ४.६.५२/४.२१.५/८.२३.१३/६.१३.१
ऋत्विगभ्य	० ८.१६.५५
ऋत्विग्भी	० ४.७.५६/६.१३.३

(सब श्रीमद - भागवतम् से)

(ख) जहाँ श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में आध्यात्मिक नियम पूर्ण रूप से हुए थे, उनकी व्यावहारिक जानकारी कई बार नहीं दी गयी थी (उदाहरणतया, अच—विग्रह की पूजा में) यह व्यावहारिक जानकारी ज्यादातर पत्रों द्वारा या निजी उदाहरण द्वारा समझाई जाती थी। अतः हमें दीक्षा के सिद्धांत और उसकी व्यावहारिकता में अंतर समझना चाहिए। श्रील प्रभुपाद ने दीक्षा को एक रूढ़िवादी रीति नहीं अपितु दिव्य ज्ञान की प्राप्ति बतलाया है जिससे मुक्ति मिल सकती है :

‘दुसरे शब्दों में, गुरु एक सुप्त जीवात्मा को जागृत करता है जिससे वह अपनी मौलिक चेतना में आकर श्री विष्णु की आराधना कर सके। यही दीक्षा का उद्देश है। दीक्षा का अभिप्राय है आध्यात्मिक चेतना से संबन्धित शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति।’
(चैतन्य चरितामृत मध्य, ६.६१, भावार्थ)

‘दीक्षा का भूल अभिप्राय शिष्य को दिव्य ज्ञान देना है जिससे वह समस्त भौतिक कल्मषों से मुक्त हो सके।’
(चैतन्य चरितामृत मध्य, ४.१११, भावार्थ)

‘दीक्षा एक प्रणाली है जिससे दिव्य ज्ञान प्रकाशित होता है और पाप कर्म के फलों का नाश होता है। एक दक्ष व्यक्ति जिसे शास्त्रों का ज्ञान है इस प्रणाली को दीक्षा कहता है।
(चैतन्य चरितामृत मध्य, १५.१०८, भावार्थ)

दीक्षा संस्कार एक औपचारिकता है, जो दीक्षा पाने के लिए अनिवार्य नहीं है :

‘सो ऐसा हुआ, १६२२ से १६३३ तक व्यावहारिक रूप से मुझे दीक्षा नहीं मिली परन्तु मुझे चैतन्य महप्रभु के आंदोलन का प्रचार करने का प्रभाव पड़ा। ऐसा मैं सोच रहा था और वही मेरे गुरु महाराज द्वारा मिली दीक्षा थी।
(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, १०/१२/७६, हैदराबाद)

‘दीक्षा संस्कार एक औपचारिकता है। अगर तुम गंभीर हो, तो वही असली दीक्षा है। मेरा संपर्क तो एक औपचारिकता मात्र है। तुम्हारी दृढ़ता, वही दीक्षा है।’

(बी.टी.जी प्रवचन, 'सर्व फॉर द डिवाइन')

‘.....गुरु परम्परा का अर्थ मात्र यह नहीं कि सदैव औपचारिक रूप से ही दीक्षा मिले। गुरु परम्परा का अर्थ है गुरु परम्परा के सिद्धांत को स्वीकारना।

(श्रील प्रभुपाद का पत्र दिनेश को, ३१/१०/६६)

‘हरे कृष्ण मन्त्र का जाप करना हमारा मूल कार्य है, वही असली दीक्षा है। और तुम जो मेरे सारे आदेशों का पालन कर रहे हो, तो दीक्षा देने वाला वही उपस्थित है।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र तमाल कृष्ण को, १६/८/६८)

‘तो दीक्षा मिले या नहीं, पहली चीज है ज्ञान....ज्ञान। दीक्षा संस्कार एक औपचारिकता है, जैसे — तुम ज्ञान के लिए पाठशाला जाते हो, 'प्रवेश पाना' तो एक औपचारिकता है। वह ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है।’

(श्रील प्रभुपाद प्रश्नोत्तर, १६/१०/७६, चंडगिद)

‘अगर कोई (नियमों का) अनुशासन पालन नहीं करता, वह शिष्य नहीं है।’

(श्रील प्रभुपाद श्रीमद — भागवतम् प्रवचन, २१/१/७४)

दीक्षा प्रक्रिया के नियमों का पालन करने की गंभीर प्रतिज्ञा को शिष्य के दिमाग में बैठाने के लिए दीक्षा संस्कार मात्र एक औपचारिकता है। इस प्रक्रिया में —

- दिव्य ज्ञान मिलता है जिससे वह समस्त कल्मषों से शुद्ध हो जाता है।
- दीक्षा गुरु के आदेशों को पालन करने की दृढ़ता को बनाये रखता है।
- गुरु के आदेशों का उत्सुकतापूर्वक पालन करने की शुरुआत करता है।

श्रील प्रभुपाद ने स्पष्ट रूप से यह बताया है कि दीक्षा संस्कार तो मात्र एक औपचारिकता है, आवश्यकता नहीं। यह औपचारिक दीक्षा संस्कार भी कई प्रक्रियाओं का मिश्रण है :

- (क) संस्था के एक अधिकारी, सामान्यतः टेंपल प्रेसिडेंट द्वारा सिफारिश।
- (ख) ऋत्विक् द्वारा सहमति।
- (ग) यज्ञ में सम्मिलन।
- (घ) आध्यात्मिक

नाम स्वीकारना।

उपर्युक्त (ख) और (घ) में ही ऋत्विक् पुजारी की आवश्यकता आती है। बाकी दो प्रक्रियाएँ टेंपल प्रेसिडेंट या दूसरा कोई योग्य ब्राह्मण करता है।

जैसा पहले बतलाया जा चुका है, ऐसा नहीं है कि दीक्षा देने के लिए गुरु को शिष्य के समान ग्रह पर होना आवश्यक है। दीक्षा की प्रक्रियाएँ यानी दिव्य ज्ञान, पाप कर्म के फलों का नाश, यज्ञ और आध्यात्मिक नाम शारीरिक अनुपस्थिति में भी दिये जा सकते हैं। यह श्रील प्रभुपाद ने अपने निजी उदाहरण द्वारा प्रदर्शित किया था। वे दीक्षा के समस्त तत्त्व अपने मध्यस्थ यानी अपने शिष्यों और पुस्तकों द्वारा देते थे। इस प्रकार ऋत्त्विक के उपयोग से कोई भी आध्यात्मिक नियम नहीं बदला गया। केवल व्यावहारिकता में अंतर है।

इस प्रकार, ऋत्त्विक का उपयोग दीक्षा की मात्र औपचारिक विधि में होता है। एक ऐसी औपचारिकता जो दिव्य दीक्षा प्रक्रिया में अनावश्यक है। (कृपया 'दीक्षा' आकृति पृष्ठ ८५ को देखें)

श्रील प्रभुपाद ने दीक्षा प्रक्रिया के तत्त्वों को उनकी महत्त्वपूर्णता अनुसार पुस्तकों में समझाया था :-

तत्त्व	क्या पुस्तकों में समझाया	रीतियों का पालन किया ?	वर्तमान रीति से मुख्य बदलाव ?	रीति बदलाव को पुस्तकों में समझाया ?
दीक्षा	हाँ	नहीं	ज्ञान को प्राथमिक रूप से वाणी द्वारा दिया न कि शारीरिक संपर्क से। निजी परीक्षा बहुत कम ली। दीक्षा के नए मापदण्ड।	कुछ
दीक्षा संस्कार	नहीं	नहीं	प्रतिनिधियों द्वारा माला पर जप। गायत्री मंत्र टेप द्वारा देना।	नहीं
नामकरण	नहीं	नहीं	हरिनाम दीक्षा के समय नाम देना। नाम देने के लिए प्रतिनिधियों का उपयोग	नहीं

इस प्रकार श्रील प्रभुपाद ने अपनी पुस्तकों में न तो दीक्षा संस्कार संबोधित तत्त्वों और न ही वर्तमान रीति में बदलाव को बतलाया था। उसी प्रकार ऋत्त्विक का उपयोग भी पुस्तकों में नहीं बतलाया। हाँ, दीक्षा यानी दिव्य ज्ञान को देने की विधि जो वर्तमान रीति से थोड़ी अलग है उसको जरूर बतलाया था। इससे साफ जाहिर होता है कि ज्यादा महत्त्वपूर्ण है उसे ही उन्होंने समझाया था।

२.” गुरु और शिष्य की पारस्परिक परीक्षा जो दीक्षा में अति महत्त्वपूर्ण होती है, बिना शारीरिक सम्पर्क के कैसे पूर्ण हो सकेगी।”

यह प्रश्न (भगवद्-गीता, ४ . ३४) श्लोक से उत्पन्न होता है जिसके अनुसार एक शिष्य को गुरु से 'संग' करना होता है, गुरु की 'सेवा' करनी होती है, और 'प्रश्न' पूछना होता है। इसी प्रकार गुरु द्वारा शिष्य को परखना होता है (चैतन्य चरितामृत, २४ . ३३०)। इन श्लोकों को ठीक प्रकार समझने से निम्नलिखित तथ्य उभर कर आते हैं :

— यहाँ 'प्रश्न पूछना', 'सेवा

करना' और परखने के लिए शारीरिक सम्पर्क की आवश्यकता नहीं लिखी हुई है।

— भगवद्-गीता के ४ . ३४ के भावार्थ में इन प्रक्रियाओं को शिष्य के लिए बहुत जरूरी कहा गया है। अतः इन प्रक्रियाओं को पूर्ण करने के लिए अगर गुरु को शिष्य के समान ग्रह पर होना आवश्यक होता तो १४ नवम्बर १६७७ के बाद कोई भी श्रील प्रभुपाद का शिष्य नहीं रहता।

— 'प्रश्न' इसलिए किए जाते हैं जिससे 'गुरु' 'ज्ञान' दे सके। ज्ञान देना यानी शिक्षा देना। यह हमने पहले ही स्वीकार कर लिया है कि ज्ञान देने के लिए या शिक्षा संबंधित प्रश्न स्वीकारने के लिए समान ग्रह पर होना आवश्यक नहीं है। (कृपया परिशिष्ट देखें) ओर जैसा पहले समझाया गया है, इस तर्क के अनुसार १४ नवम्बर १६७७ के बाद किसी को भी 'शिक्षा' नहीं मिली है।

— 'परीक्षा' संभावित शिष्य द्वारा सारे नियम पालन करने की सहमती की होती है जो गुरु का प्रतिनिधि भी कर सकता है।

'हमारे कुष्ण भावनामृत आन्दोलन में आवश्यकता है कि हर कोई पाप के चार खम्भों को छोड़ने को राजी हो। खासतौर से पाश्चात्य देशों में हम प्रथम यह परखते हैं कि क्या एक संभावित शिष्य नियमों का पालन करने के लिए सहमत है।'

(चैतन्य चरितामृत, मध्य, २४ . ३३० भावार्थ)

दूसरी दीक्षा (गायत्री दीक्षा) के लिए संभावित शिष्यों की परीक्षा के लिए भी प्रतिनिधियों के उपयोग की बात कुछ ही पंक्तियों बाद फिर दोहराई गई है —

'इस प्रकार एक शिष्य, गुरु या उनके प्रतिनिधि के मार्गदर्शन में, छः माह से एक साल तक भक्ति-सेवा करता है।'

(चैतन्य चरितामृत, मध्य, २४ . ३३० भावार्थ)

प्रतिनिधियों का उपयोग कितना आवश्यक है हम कुछ पंक्तियों उपरान्त ही देखते हैं।

'गुरु को छः माह से एक वर्ष तक शिष्य की जिज्ञासा की परीक्षा लेनी चाहिए।'

(चैतन्य चरितामृत, २४ . ३३०, भावार्थ)

यह ध्यान रखना चाहिए कि श्रील प्रभुपाद ने जिस तरह से यह संस्था प्रबंधित की थी उससे इस निर्देश को पालन करना असंभव हो जाता है। वे अपने हजारों शिष्यों को पूरे ६ माह तक निजी तौर पर परख नहीं सकते थे। इसलिए यह निर्देश पूर्ण करने के लिए शारीरिक सम्पर्क की आवश्यकता होती तो श्रील प्रभुपाद ने एक प्रचारक संस्था की स्थापना क्यों की। ऐसी संस्था में जिसमें मंदिर और शिष्य पूरी धरती पर फैले हुए हैं, इस तरह की शारीरिक परीक्षा बिल्कुल असंभव हो जाती है। इसी प्रकार का तर्क तो दूसरे 'गौडीय वैष्णव' समुदाय

के लोग देते हैं कि श्रील प्रभुपाद को जो फल प्रचार स्वरूप मिला वह शास्त्र के निर्देशों को उल्लंघन से मिला।

शवसे प्रभावशाली प्रमाण है स्वयं आचार्य का निजी उदाहरण। श्रील प्रभुपाद ने बहुसंख्या में शिष्यों को निजी परीक्षा के बिना दीक्षा दी। इस प्रकार श्रील प्रभुपाद श्रील प्रभुपाद ने एक ऐसी प्रणाली स्थापित की जिसमें दीक्षा के लिए उनके प्रतिनिधियों का संग लेना उनके संग लेने के समान ही है।

यह भी तर्क दिया जा सकता है कि उस समय निजी परीक्षा के निर्देश को लागू नहीं करना ठीक था; क्योंकि गुरु स्वयं इसी धरती पर मौजूद थे जिससे कि निजी परीक्षा संभव तो थी, पर इस तर्क का कोई मूल नहीं है क्योंकि :

- इस तरह के विशिष्ट निर्देश को शास्त्रों में कही नहीं बतलाया गया है।
- जब निजी परीक्षा के लिए प्रतिनिधियों की बात श्रील प्रभुपाद करते हैं तब यह नहीं कहते कि यह प्रक्रिया उनके धरती पर रहने तक ही लागू होगी।
- जैसा बतलाया जा चुका है, शारीरिक परीक्षा एक शास्त्रिक आवश्यकता नहीं है। परीक्षा के लिए प्रतिनिधि (यानी उनके शिष्य एवं पुस्तक) के उपयोग से खुद श्रील प्रभुपाद सहमत थे। इसलिए यह प्रश्न कि निजी परीक्षा कब हो या कब न हो, उठता ही नहीं है।
- बिना किसी शारीरिक सम्पर्क के भी दीक्षा दी गयी थी। यह प्रमाणित करता है कि इस प्रकार की परीक्षा दीक्षा के प्रक्रिया के लिए आवश्यक नहीं है।

श्रील प्रभुपाद ने यह स्पष्ट बतला दिया था कि एक शिष्य को नियमों का पालन करना है। यह टेम्पल प्रेसिडेन्ट और ऋत्विक् को देखना है। दीक्षा के नियम अब भी वही हैं जो श्रील प्रभुपाद के समय थे। जब वे यहाँ सशरीर उपस्थित थे तब अपने अंतिम दिनों में नहीं चाहते थे कि उनसे कुछ सलाह ली जाये। तो वे अब क्यों दखलंदाजी करना चाहेंगे। अब हमारा एकमात्र कर्तव्य है कि सारे नियम दृढतापूर्वक कायम रखे।

३. "हम श्रील प्रभुपाद को गुरु रूप में स्वीकार कर सकते हैं, परन्तु हमें यह कैसे मालूम चलेगा कि श्रील प्रभुपाद ने अपनी शारीरिक अनुपस्थिति में भी हमें स्वीकार लिया है।"

७ जुलाई को ऋत्विक् प्रणाली स्थापित करते हुए श्रील प्रभुपाद ने कहा था कि उनकी सहमति के बिना अब से ऋत्विक् शिष्य स्वीकार सकते हैं। अतः उस समय से श्रील प्रभुपाद शिष्यों को परखने और हामी देने में लिप्त नहीं थे। ऋत्विक् के पास पूर्ण अधिकार और आजादी थी। श्रील प्रभुपाद का शारीरिक कार्य कुछ नहीं रहा था।

श्रील प्रभुपाद : तो मेरे लिए रुके बिना, जिसे ठीक समझो। वह तुम्हारे ऊपर निर्भर करेगा।

तमाल कृष्ण गोस्वामी : हमारे ऊपर।

श्रील प्रभुपाद : हाँ।

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, ७/७/७७, वृन्दावन)

ऋत्विक् द्वारा दिये गये नाम को तमाल कृष्ण गोस्वामी द्वारा 'इनिशिएटेड डिसाइपल्स' पुस्तक में लिखा जाता था। श्रील प्रभुपाद को व्यवहारिक तौर पर शिष्य की अनुभूति भी नहीं होती थी। इस तरह आज भी वैसे ही कार्य चल सकता है।

४.” गुरु का संग लेना, 'प्रश्न पूछना' और 'सेवा करना' तब ही संभव है जब अपने गुरु के धरती छोड़ने से पहले दीक्षा मिली हो।”

उपर्युक्त तर्क यह तो मानता है कि गुरु की शारीरिक अनुपस्थिति में भी गुरु से 'संग लेना', 'प्रश्न पूछना' और 'सेवा करना' संभव है। यह निर्देश कि यह तभी संभव है जब 'गुरु के धरती छोड़ने से पहले दीक्षा मिली हो' एक शुद्ध आविष्कार है। यह श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में कही नहीं मिलता। अतः हम इसकी आराम से अनदेखी कर सकते हैं। दीक्षा पाने के लिए औपचारिक दीक्षा संस्कार की भी जरूरत नहीं होती। यह तो गुरु द्वारा शिष्य को दिव्य ज्ञान प्रदान करना होता है। साथ में कर्म फलों का नाश भी होता है।

‘गुरु परम्परा का अर्थ यह नहीं कि औपचारिक दीक्षा मिले। गुरु परम्परा का अर्थ है गुरु परम्परा के सिद्धान्त को स्वीकारना।’
(श्रील प्रभुपाद का पत्र दिनेश को, ३१/१०/६६)

‘तो, दीक्षा मिले या नहीं, पहली चीज है ज्ञान ज्ञान। दीक्षा संस्कार एक औपचारिकता है, जैसे-तुम ज्ञान के लिए पाठशाला जाते हो, 'प्रवेश पाना' तो एक औपचारिकता है। वह ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है।’
(श्रील प्रभुपाद साक्षात्कार, १६/१०/७६, चंडीगढ़)

यह एक विवेकहीन तर्क है कि दीक्षा की दिव्य प्रक्रिया इसलिए ठीक से कार्य नहीं कर सकती; क्योंकि एक औपचारिक यज्ञ में गुरु शारीरिक रूप से मौजूद नहीं थे। यहाँ तक कि -

- श्रील प्रभुपाद खुद दीक्षा संस्कारों में उपस्थित नहीं होते थे। यह ज्यादातर उनके प्रतिनिधियों यानी टेंपल प्रसिडेंट, वरिष्ठ संन्यासी एवं ऋत्विक् द्वारा किये जाते थे।
- यह भी एक तथ्य है कि श्रील प्रभुपाद की पिछले २० वर्षों की शारीरिक अनुपस्थिति में भी उनके हजारों शिष्य दीक्षा प्रक्रिया से लाभ उठा रहे हैं।

यह तर्क दिया जा सकता है कि श्रील प्रभुपाद उन दीक्षा संस्कारों में अनुपस्थित जरूर थे परन्तु वे तो वे इस धरती पर। तो गुरु की इसी धरती पर उपस्थिति क्या आवश्यक होती है ? इस तर्क को ठीक साबित करने के लिए हमें निम्नलिखित निर्देश जैसा कोई निर्देश श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में ढूँढना होगा :

‘ दीक्षा तभी पूर्ण हो सकती है जब दीक्षा संस्कार के दौरान गुरु एवं शिष्य में दूरी धरती के व्यास के समान या कम हो।’

आज तक किसी को ऐसा निर्देश नहीं मिला है। वस्तुतः निम्नलिखित श्लोक (भगवद्-गीता, ४ . २१) हमारी परम्परा का दीक्षा संबोधित प्रसिद्ध उदाहरण है जो उपर्युक्त धारणा को खारिज करता है।

‘ तो मनु या मनु के पुत्र इक्ष्वाकु से बातचीत करने में कोई मुश्किल नहीं थी। तब संचार माध्यम था या दूरसंचार प्रणाली इतनी विकसित थी कि संदेश को एक ग्रह से दूसरे ग्रह तक स्थानान्तरित किया जा सकता था।’
(श्रील प्रभुपाद भगवद्-गीता, २४/८/६८)

उपर्युक्त से प्रतीत होता है कि गुरु और शिष्य के बिच दूरी से दीक्षा में कोई बाधा नहीं आ सकती।

(क) ऋत्त्विक प्रणाली का प्रस्ताव हम नहीं दे रहे हैं। अपितु श्रील प्रभुपाद दे रहे हैं, अपने अंतिम आदेश द्वारा। अतः अगर यह प्रणाली ईसाई धर्म जैसी भी है तो भी हमें इसका पालन करना होगा; क्योंकि यह हमारे गुरु का आदेश है।

(ख) ईसाई अब भी ईसा मसीह को गुरु मान सकते हैं। इस तथ्य को श्रील प्रभुपाद ने सहमति दी थी। उन्होंने सिखाया था कि जो भी ईसा मसीह के आदेशों का पालन करेगा वह उनका शिष्य होगा और उनके द्वारा प्रतिपादित मुक्ति पायेगा :

मधुद्विसा : क्या एक ईसाई बिना किसी गुरु का मार्गदर्शन लिये, और केवल ईसा मसीह के उपदेशों को सच मानकर और उनका पालन करके आध्यात्मिक जगत जा सकता है ?

श्रील प्रभुपाद : मुझे समझ आया।

तमाल कृष्ण गोस्वामी : क्या आज कोई ईसाई बिना गुरु के, परन्तु बाइबिल पढ़कर और ईसा मसीह के शब्दों को पालन कर, पहुँच

श्रील प्रभुपाद : जब तुम बाइबिल पढ़ते हो, तब तुम गुरु मानते हो। तुम कैसे बोल सकते हो बिना गुरु के ? जैसे ही तुम बाइबिल पढ़ते हो, वैसे ही तुम ईसा मसीह के आदेशों का पालन करते हो और इसका मतलब कि तुमने गुरु के बना लिया। तो बिना गुरु के बात ही नहीं हुई।

मधुद्विसा : मैं एक जीवित गुरु की बात कर रहा था।

श्रील प्रभुपाद : गुरु नहीं....शाश्वत है। गुरु शाश्वत है....तो तुम्हारा प्रश्न है 'बिना गुरु के'। बिना गुरु के तुम जीवन के किसी स्तर पर नहीं हो सकते। तुम यह गुरु अपनाओ या वह गुरु वह दूसरी बात है। परन्तु तुम्हें स्वीकारना होगा। जैसा तुम बोले रहे हो, 'बाइबिल पढ़ने से', तो जब तुम बाइबिल पढ़ते हो तो इसका मतलब है तुम ईसा मसीह को गुरु मान रहे हो, जिनके प्रतिनिधि कोई 'प्रीस्ट' या कलर्जी होते हैं।

(श्रील प्रभुपाद प्रातः भ्रमण, २/१०/६८, सीएटल)

‘जहाँ तक ईसा मसीह के भक्तों के लक्ष्य का सवाल है, वे स्वर्ग जा सकता है, बस। यह इस भौतिक संसार में एक ग्रह है। ईसा मसीह के भक्त होने का मतलब है जो दृढतापूर्वक दस ‘कमान्डमेन्ट्स’ का पालन करे.....अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि ईसा मसीह के भक्त स्वर्ग लोकों में स्थानान्तरित होंगे जो इस भौतिक जगत में ही है।

(श्रील प्रभुपाद का पत्र भगवान को, २/३/७०, सीएटल)

‘सच तो यह है कि जो ईसा मसीह द्वारा मार्गदर्शित है उसे मुक्ति अवश्य मिलेगी।’

(परिपूर्ण प्रश्न परिपूर्ण उत्तर, अध्याय ६)

‘....या ईसाई ईसा मसीह के अनुयायी है, एक महापुरुष। महाजनों येन गतः स पंथ। तुम किसी महाजन, महापुरुष के मार्गदर्शन से चलो....तुम एक आचार्य के अनुयायी बनो, जैसे ईसाई, वे ईसा मसीह, आचार्य के अनुयायी है। मोहम्मदन्स वे आचार्य के अनुयायी है। मुहम्मद। यह अच्छा है। तुम्हें किसी एक आचार्य का पालन करना होगा....एवं परम्परा प्राप्तम।

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, २०/५/७५, मेलबोर्न)

ग) 'ईसाई बनने की यह आपत्ति व्यंगोक्ति है क्योंकि वर्तमान की गुरु प्रणाली में इस्कॉन ने खुद कुछ ईसाई प्रथाओं को अपना लिया है।

जी.बी.सी. द्वारा मतदान के बहुमत से गुरु का चयन उसी समान है जिस तरह कैथोलिक चर्च में पोप का चयन 'कॉलेज ऑफ कार्डिनल' करते हैं :

'मतदान की प्रणाली गुरु के वचन के लिएमतदान देने योग्य सदस्यों द्वारा किया जायेगा..

..गुरु प्रणाली के लिए मतदान....जी.बी.सी. के दो-तिहाई बहुमत से समस्त जी.बी.सी. का गुरु के लिए चयन हो सकता है।

(जी.बी.सी. प्रस्ताव)

उसी तरह ईसाई प्रथाएँ ईसा मसीह ने कभी नहीं बताई थी और श्रील प्रभुपाद ने पूरी तरह से इनकी आलोचना की है।

'सामाजिक मतदान से वैष्णव आचार्य को कभी नहीं चुना जा सकता। वैष्णव आचार्य स्वतः ही तेजस्वी होते हैं,और उन्हें किसी न्यायालय के निर्णय की आवश्यकता नहीं।'

(चैतन्य चरितामृत मध्य,१ . २२०, भावार्थ)

'श्रील जीव गोस्वामी समझाते हैं कि गुरु के चयन के लिये उनके वंश,सामाजिक प्रथा या इक्लिजिआस्टीकलिक सभा की सम्मती को नहीं देखना चाहिए।'

(चैतन्य चरितामृत आदी,१ . ३५, भावार्थ)

६ . “ ऋत्त्विक एक तरह की दीक्षा ही देते हैं। श्रील प्रभुपाद तो हमारे शिक्षा गुरु ही हैं। ”

(क) ऋत्त्विक का कर्तव्य दीक्षा गुरु से अलग होता है। उसका एकमात्र कर्तव्य है शिष्यों को दीक्षा देने में दीक्षा गुरु की साहायता करना,न कि उनको अपना बताना।

(ख) ऋत्त्विक केवल दीक्षा प्रणाली का निरीक्षण करता है,आध्यात्मिक नाम देता है आदि। उदाहरण के लिए टेम्पल प्रेसिडेन्ट ही कई बार दीक्षा संस्कार यज्ञ करते थे पर कोई नहीं कहता था कि वह दीक्षा गुरु थे।

(ग) श्रील प्रभुपाद जो बनन चाहते हैं उन्हें वह बनने क्यों नहीं दिया जाये ? निश्चित ही ये हमारे शिक्षा गुरु हैं पर जैसा उन्होंने ६ जुलाई को इंगित किया था,वे हमारे दीक्षा गुरु भी हैं।

(घ) श्रील प्रभुपाद हमारे प्राथमिक शिक्षा गुरु तो हैं ही वे वस्तुतः हमारे दीक्षा गुरु भी हैं क्योंकि :

- वे दिव्य ज्ञान देते हैं - दीक्षा की परिभाषा
- वे भक्ति लता बीज बोते हैं - दीक्षा की परिभाषा।

दूसरे भक्त उपर्युक्त दो कार्यों में पुस्तक वितरण, प्रचार आदि से साहायता कर सकते हैं, पर वे वर्तमान-प्रदर्शक गुरु होंगे, दीक्षा गुरु नहीं। इस सेवा द्वारा वे खुद भी शुद्ध भक्त बन सकते हैं।

(ड) सामान्यतः प्राथमिक शिक्षा गुरु ही बाद में दीक्षा गुरु बनता है :

‘श्रील प्रभुपाद इस्कॉन के समस्त भक्तों के मूल शिक्षा गुरु हैं....श्रील प्रभुपाद के उपदेश इस्कॉन समस्त भक्तों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण उपदेश है।’ (जी.बी.सी. प्रस्ताव संख्या ३५, १६६४)

‘सामान्यतः वह गुरु जो एक शिष्य को निरन्तर आध्यात्मिक विज्ञान सिखाता है वही बाद में उसका दीक्षा गुरु बनता है।’
(चैतन्य चरितामृत आदि, १.३५, भावार्थ)

‘एक शिक्षा या दीक्षा गुरु का कर्तव्य होता है कि वह शिष्य को उचित शिक्षा दे। इस प्रणाली का ठीक से पालन करना शिष्य का कर्तव्य है। शास्त्रिक निर्देशों के अनुसार शिक्षा और दीक्षा गुरु में कोई अंतर नहीं है, और सामान्यतः शिक्षा गुरु ही बाद में दीक्षा गुरु बनता है।’

(श्रीमद-भागवतम्, ४.१२.३२, भावार्थ)

७. “अगर श्रील प्रभुपाद सबके शिक्षा गुरु हैं, तो वे दीक्षा गुरु भी कैसे हो सकते हैं ?”

प्रायः नाम के कारण दीक्षा और शिक्षा गुरु के कार्य में भ्रम पैदा होता है। अतः माना जाता है कि शिक्षा गुरु ही शिक्षा दे सकते हैं, दीक्षा गुरु नहीं। परन्तु पिछले कथन के अनुसार दीक्षा गुरु भी उपदेश देते हैं। नहीं तो वह किस तरह ज्ञान का प्रेषण करेंगे ?

प्रधुम्न : गुरु पदाश्रयः। ‘पहले गुरु के कमल पद की शरण लेनी चाहिए।’ तस्मात् कृष्ण-दीक्षादी-शिणाम्। तस्मात्। ‘उनसे, कृष्ण-दीक्षादी-शिणाम्, सभी को कृष्ण दीक्षा एव शिक्षा लेनी चाहिए।’

श्रील प्रभुपाद : दीक्षा का अभिप्राय है दिव्य -ज्ञानम् इती दीक्षा। यह समझता है कि दिव्य ज्ञान, दिव्य, यह दीक्षा है। दि, दिव्य, दीक्षाणम्। दीक्षा। तो दिव्य ज्ञान, अगर तुम गुरु नहीं स्वीकारते, तो तुम्हें कैसे आध्या... तुम इधर-उधर, इधर-उधर समझोगे और समय बर्बाद करोगे और साथ में अपना कीमती समय भी।

इसलिए तुम्हें एक दक्ष गुरु द्वारा मार्गदर्शन मिलना चाहिए। आगे पढो।

प्रधुम्न : कृष्ण-दीक्षादी-शिणाम्।

श्रील प्रभुपाद : शिक्षाणाम्। हमें सीखनी चाहिए। अगर तुम सीखते नहीं तो तुम आगे कैसे बढ़ोगे ? इसके बाद ?
(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, २७/१/७७, भुवनेश्वर)

गुरु-शिष्य संबद्ध के सुप्रसिद्ध श्लोक (भगवद-गीता, ४.३४) से सिद्ध होता है कि दिव्य शिक्षा ही दीक्षा का सार है। इस श्लोक में ‘उपदेक्ष्यांती’ का शब्द से शब्द अनुवाद ‘दीक्षा’ लिखा गया है। परन्तु इस श्लोक के पूर्ण अनुवाद में ‘दीक्षा’ की बजाय ‘शिक्षा’

देना ' बताया गया है। यह " शिक्षा पाने के लिए शिष्य को ' प्रश्न ' पूछने चाहिए।" इस प्रकार यहाँ ' दीक्षा की प्रणाली ' ओर ' शिक्षा देने ' को पर्यायवाची बताया गया है।

इस प्रकार ' प्रभुपाद शिक्षा गुरु है दीक्षा गुरु नहीं ' के तर्कवादी अपने ही जाल में फँस जाते हैं। इस ग्रह पर नहीं होने के उपरान्त भी अगर श्रील प्रभुपाद ' शिक्षा देने ' में समर्थ है तो स्वतः ही वे दिव्य ज्ञान भी दे रहे होंगे। अतः श्रील प्रभुपाद बिना शारीरिक सम्पर्क के अगर शिक्षा गुरु बन सकते हैं तो दीक्षा गुरु क्यों नहीं ? यह एक हास्यास्पद तर्क है कि वर्तमान में श्रील प्रभुपाद शिक्षा गुरु होने के नाते शिक्षा तो दे सकते हैं परन्तु अगर उनका नाम बदल कर दीक्षा गुरु कर दिया जाए तो शिक्षा नहीं दे पायेंगे। यह तथ्य कि इस ग्रह पर नहीं होकर भी श्रील प्रभुपाद शिक्षा गुरु हो सकते हैं, प्रमाणित करता है कि वे साथ में दीक्षा भी दे सकते हैं।

कुछ व्यक्तिगण तो यह भी नकार देते हैं कि श्रील प्रभुपाद एक भौतिक शरीर की अनुपस्थिति में दिव्य शिक्षा दे सकते हैं। अगर यह सत्य होता तो क्यों श्रील प्रभुपाद कई किताबें लिखने के लिए इतना कष्ट उठाते और उनको दस हजार साल तक वितरित करने के लिए एक विशिष्ट ' भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट ' बताते। अगर अब श्रील प्रभुपाद की प्रस्तकों से दिव्य उपदेश मिलना संभव नहीं होता तो हम उन्हें वितरित क्यों कर रहे हैं ? क्यों आज भी लोग केवल इनको पढ़कर ही श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में आ रहे हैं।

८. " तुम क्या यह कहना चाहते हो कि श्रील प्रभुपाद ने एक भी शुद्ध भक्त नहीं बतलाया ?"

नहीं, हम केवल यह कह रहे हैं कि श्रील प्रभुपाद ने दीक्षा के लिए ऋत्विक् प्रणाली स्थापित की है। इस स्पष्ट अन्तिम आदेश में यह मायने नहीं रखता कि श्रील प्रभुपाद ने शुद्ध भक्त बनाये अथवा नहीं। शिष्य होने के नाते हमारा एकमात्र कर्तव्य है गुरु के आदेश का पालन करना। यह उचित नहीं है कि गुरु के निर्देशों को छोड़ दे और इसकी वजाय यह सोचने लगे कि कितने शुद्ध भक्त अभी हैं या भविष्य में होंगे।

श्रेया भी हो सकता है कि वर्तमान में कोई शुद्ध भक्त नहीं है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के शारीरिक प्रस्थान उपरान्त भी कुछ ऐसी ही स्थिति थी। करीब ४० वर्ष के उपरान्त ने इंगित किया था कि गौडिया मठ से सिर्फ एक प्रमाणिक दीक्षा आचार्य उत्पन्न हुए।

' वस्तुस्थिति में मेरे गुरु भाइयों में कोई भी आचार्य बनके योग्य नहीं है।हमारे शिष्यों को उत्साहित करने के स्थान पर वे उन्हें कभी-कभी दूषित कर सकते हैं।वे हमारी सुलभ प्रगति में क्षति पहुँचाने के लिए अति योग्य है। '

(श्रील प्रभुपाद का पत्र रूपानुगा को, २८/४/७४)

श्रील प्रभुपाद ने 'आचार्य' और 'गुरु' शब्द का परस्पर बदलकर उपयोग किया था :

"मैं किसी को गुरु बनाऊँगा। मैं कहूँगा कौन गुरु है ? 'अब तुम आचार्य बनो'....तुम धोखा दे सकते हो,लेकिन वह प्रभावशाली नहीं रहेगा। जैसे हमारे गौडीय मठ को देखो। सभी लोग गुरु बनना चाहते थे। एक छोटा मंदिर और 'गुरु'। किस प्रकार का गुरु ?"

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, २२/४/७७)

यह श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के प्रचार कार्य का निंदन लगता है। अपितु, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर को 'असफल' समझना बहुत बड़ी गलती होगी। उन्होंने कहा था कि उनका आन्दोलन सिर्फ एक शुद्ध भक्त ही बना पाया तो वह उनकी सफलता होगी।

इसके आलावा ऋत्विक् प्रणाली को लागू करने से शुद्ध भक्तों के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। कई तरह से ऋत्विक् और शुद्ध भक्त साथ में निर्वाह और प्रचार कर सकते हैं, जैसे :

- श्रील प्रभुपाद ने ऐसे कई शुद्ध भक्त बनाए हो सकते हैं जिनको दीक्षा गुरु बनने की लेश मात्र भी इच्छा नहीं हो। इसका कोई प्रमाण नहीं कि इस्कॉन के सारे शुद्ध भक्त हर साल मतदान के लिए खड़े होते हैं। हो सकता है कि ये शुद्ध भक्त श्रील प्रभुपाद और उनके आन्दोलन की नम्रतापूर्वक सहायता ही करना चाहे। ऐसा कहीं निर्देश नहीं है कि हर शुद्ध भक्त इस पद्धति अनुरूप संस्था में कार्य करने में आनन्द महसूस करेंगे।

- श्रील प्रभुपाद की यह इच्छा भी हो सकती है कि बहुसंख्या में शिक्षा गुरु हों। परन्तु दीक्षा गुरु और कोई नहीं। यह धारणा श्रील प्रभुपाद के पूर्व कथन से मेल खाती है जिसमें वे सबको शिक्षा गुरु बनने को कह रहे थे और सावधान कर रहे थे कि शिष्य नहीं बनाओ। श्रील प्रभुपाद ने अपने आन्दोलन की सफलता के लिए खुद ही उपाय कर लिये थे। इस तथ्य से भी उपर्युक्त धारणा मेल खाती है :

अतिथि : क्या आप अपना उत्तराधिकारी चुनने वाले हैं ?

श्रील प्रभुपाद : यह पहले से ही सफल है।

अतिथि : पर ऐसा तो कोई होना चाहिए, जो सब कार्यों का प्रबन्ध कर सके।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यह हम कर रहे हैं। हम इन भक्तों को बना रहे हैं जो इसका प्रबन्ध करेंगे।

हनुमान : यह एक चीज बोल रहे हैं, यह अतिथि, और मैं भी जानना चाहूँगा क्या आपका उत्तराधिकारी नियुक्त हो चुका है या आपका उत्तराधिकारी....

श्रील प्रभुपाद : मेरी सफलता का समय है।

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, १२/२/७५, मैक्सिको)

'अस्सी की उम्र के बाद कोई भी और ज्यादा दिन जीवित रहने की अपेक्षा नहीं कर सकता। मेरी जिन्दगी अब करीब-करीब खत्म हो चुकी है। तो तुम्हें यह आगे बढ़ाना है और ये पुस्तकें सब कुछ करेगी।

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, १८/२/७६)

'तो अब नया कहने को कुछ नहीं है। जो भी मुझे कहना था वह मैंने अपनी पुस्तकों में कह दिया है। अब तुम इसे समझने का प्रयास करते रहो और अपनी चेष्टा में लगे रहो। मैं उपस्थित रहूँ या उपस्थित न रहूँ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

(श्रील प्रभुपाद सम्बोधन, १७/५/७७, वृन्दावन)

संवाददाता : आपकी मृत्यु के उपरान्त अमेरिका में आपके आन्दोलन का क्या होगा ?

श्रील प्रभुपाद : मैं कभी नहीं मरूँगा।

भक्तगण : जय ! हरी बोल ! (हँसी)

श्रील प्रभुपाद : मैं अपनी पुस्तकों से जीवित रहूँगा और तुम इनका उपयोग करोगे ।
(श्रील प्रभुपाद संवाददाता सम्मेलन, १६/७/७५, सेन फ्रांसिस्को)

संवाददाता : क्या आप अपने उत्तराधिकारी को प्रशिक्षण दे रहे हैं ।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, मेरे गुरु महाराज हैं ।
(श्रील प्रभुपाद संवाददाता सम्मेलन, १६/७/७५, सेन फ्रांसिस्को)

केवल भगवान श्री चैतन्य मेरा स्थान ले सकते हैं । वे इस आंदोलन को संभालेंगे ।
(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, २/११/७७)

साक्षात्कारी : ऐसा अवश्यंभावी समय जरूर आयेगा जब आपके उत्तराधिकारी की जरूरत होगी तब क्या होगा ?

रामेश्वर : यह भविष्य के बारे में पूछा रहा है, भविष्य में आन्दोलन का कौन मार्गदर्शन करेगा ।

श्रील प्रभुपाद : ये मार्गदर्शन करेंगे, मैं इन्हें प्रशिक्षण दे रहा हूँ ।

साक्षात्कारी : परन्तु क्या एक आध्यात्मिक नायक होगा ?

श्रील प्रभुपाद : नहीं । मैं जी • वी • सी • को प्रशिक्षण दे रहा हूँ, अठराह समस्त धरती पर ।

(श्रील प्रभुपाद साक्षात्कार, १०/६/७६, लॉस एंजिल्स)

संवाददाता : क्या आप अपने उत्तराधिकारी के लिए एक व्यक्ति नियुक्त करेंगे या आप पहले से कर चुके हैं ?

श्रील प्रभुपाद : ऐसा मैं अभी सोच नहीं रहा । परन्तु एक व्यक्ति की जरूरत नहीं है ।

(श्रील प्रभुपाद साक्षात्कार, ४/६/७६, लॉस एंजिल्स)

साक्षात्कारी : मैं सोच रहा था कि क्या आपका कोई उत्तराधिकारी.... आपके मरणोपरान्त आपका स्थान लेने के लिए क्या कोई उत्तराधिकारी है ?

श्रील प्रभुपाद : अभी तक निश्चित नहीं है । अभी तक निश्चित नहीं है ।

साक्षात्कारी : तो क्या प्रणाली होगी ? क्या हरे कृष्ण....

श्रील प्रभुपाद : हमारे सचिव हैं । वे प्रबन्धन कर रहे हैं ।

(श्रील प्रभुपाद साक्षात्कार, १४/७/७६, न्यूर्याक)

यह तथ्य कि श्रील प्रभुपाद ने अपने किसी शिष्य को दीक्षा गुरु बनने का अधिकार नहीं दिया, का मतलब यह नहीं होता कि उनमें से कोई भी शुद्ध भक्त नहीं है । एक शिक्षा गुरु भी मुक्त आत्मा हो सकता है । ऐसा भी हो सकता है कि श्रीकृष्ण की योजना अनुसार किसी को भी यह कार्य नहीं करना है । अपितु श्रील प्रभुपाद के अनुयायियों को एक दूसरा बहुत महत्वपूर्ण कार्य अदा करना है उसी तरह जैसा श्रील प्रभुपाद की शारीरिक उपस्थिति में करते थे । वह है उनके सहायक के रूप में, उनके उत्तराधिकारी आचार्य के रूप में नहीं :

‘समस्त जी.वी.सी. को शिक्षा गुरु बनना चाहिए । मैं दीक्षा गुरु हूँ । और जैसा मैं सिखा रहा हूँ वैसा सिखाकर और जैसा मैं कर रहा हूँ वैसा करके तुम्हें शिक्षा गुरु बनन चाहिए ।

(श्रील प्रभुपाद का पत्र मधुद्विसा को, ४/८/७५)

‘कभी-कभी दीक्षा गुरु हर समय उपस्थित नहीं होता। इसलिए शिक्षा, उपदेश एक वरिष्ठ भक्त से ले सकते हैं। उसको कहते हैं — शिक्षा गुरु।

(श्रील प्रभुपाद भगवद्-गीता प्रवचन, ४/७/७४, होनोलूलू)

अतः विषय यह नहीं कि क्या श्रील प्रभुपाद ने एक भी शुद्ध भक्त बनाया या नहीं। विषय तो यह है कि क्या उन्होंने ऋत्विक् प्रणाली स्थापित की है। दीक्षा गुरु श्रील प्रभुपाद अभी सशरीर उपस्थित नहीं हैं, इसका यह अर्थ नहीं कि वे दीक्षा गुरु नहीं रहे। उनकी सशरीर अनुपस्थिति में प्रामाणिक शिक्षा गुरुओं से हमें उपदेश लेने चाहिए। उनकी संख्या लाखों में हो सकती है।

६. ”जब तक गुरु अनुशासन और दृढता से सारे नियमों का पालन कर रहा हो, तब तक इसका फर्क नहीं पड़ता कि वह कितना शुद्ध है। इस तरह सेवा करते हुए वह अंत में योग्य हो जायेगा और अपने शिष्यों को भगवद्-धाम वापस ले जायेगा।”

जैसा पहले विश्लेषण किया गया था, दीक्षा गुरु बनने के लिये एक भक्त के सबसे उच्च स्तर पर स्थित होना चाहिए यानी कि महाभागवत। और उनके पिछले आचार्य द्वारा आदेश मिलना चाहिए। उपर्युक्त ‘पोस्ट डेटेड’ दर्शन एक अपराधिक मनोधारणा है जो निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट है :

‘यदयापी पृथु महाराज वस्तुतः परम पुरुषोत्तम भगवान के अवतार थे तो भी उन्होंने अपनी प्रशंसा नकार दी क्योंकि परम पुरुष के गुण उनमें उजागर नहीं हुए थे। इससे वह यह समझना चाहते थे कि अपने गुणों की आनुपस्थिति में किसी व्यक्ति को अपने अनुयायियों को अपनी प्रशंसा में नहीं लगाना चाहिए। हो सकता है कि वे गुण भविष्य में उत्पन्न हो जाये। अगर किसी व्यक्ति में महापुरुषों के गुण नहीं हो और इसका उपरान्त भी वह अपने अनुयायियों को अपनी प्रशंसा में यह सोचकर लगाता है कि भविष्य में तो वे गुण उजागर हो ही जायेंगे, तो इस तरह की प्रशंसा वस्तुतः एक अपमान है।’

(श्रीमद्-भगवत्सूक्त, ४ . १५ . २३, भावार्थ)

जिस तरह एक अंधे व्यक्ति को ‘ कमल नयनों वाले ‘ से सम्बोधित करना एक अपमान है, उसी प्रकार एक शुद्ध आत्मा को भगवान के बराबर (जी.आई.आई., पृष्ठ १५ विषय ८) समझना एक अपमान है। वह व्यक्ति का ही नहीं जिसकी प्रशंसा हो रही है अपितु भगवान कृष्ण तक शुद्ध भक्तों की गुरु परम्परा के लिए भी। दृढता और अनुशासन से नियमों का पालन करने के लिए एक शिष्य आगे बढ़ता है। प्रायःपचार भी करने लग जाते हैं कि दोनों समान हैं। केवल इसलिए कि कोई दृढतापूर्वक नियमों का पालन कर रहा

है, महाभागवत नहीं बन जाता। न ही कि उसके गुरु ने अब उसे गुरु बनने की आज्ञा दे दी। और अगर एक शिष्य बिना योग्य हुए और आज्ञा पाये दीक्षा देना चालू करता है तो वह नियमों का पालन ठीक से नहीं कर रहा है।

कई बार भक्त उपदेशामृत के श्लोक ५ के भावार्थ के एक कथन ‘एक कनिष्ठ वैष्णव या मध्यम अधिकारी भी शिष्य स्वीकार सकता है’ का उपयोग कर इस प्रकार के सिद्धान्त को प्रामाणिक बताना चाहते हैं। किसी कारणवश वे आगे की पंक्ति नहीं पढ़ते जिसमें शिष्यों का ऐसे गुरुओं से बचने की चेतावनी दी गयी है कि ‘उनक अपर्याप्त मार्गदर्शन में जीवन के परम लक्ष्य तक पहुँचने में मुश्किल पायेंगे’। आगे कहा गया है कि ‘अतः शिष्य को सावधानीपूर्वक एक उत्तम अधिकारी को ही गुरु बनाना चाहिए।’

आयोग्य गुरुओं को भी चेतावनी दी गयी है —

‘उत्तम अधिकारी स्थिति तक पहुँचे बिना किसी को गुरु नहीं बनना चाहिए।’

अगर कोई गुरु ‘अपर्याप्त मार्गदर्शन’ ही दे रहा है तो परिभाषा अनुसार वह दीक्षा गुरु नहीं बन सकता क्योंकि दीक्षा के लिए पूर्ण दिव्य ज्ञान देना होता है। ‘पर्याप्त’ मतलब पूर्ण नहीं। यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे दीक्षा गुरु, जो कि हमें आगे बढ़ने के लिए पूर्ण मार्गदर्शन न दे पाये उनकी अनदेखी ही कर देनी चाहिए।

१०. ”ऋत्विक् प्रणाली का अर्थ हुआ गुरु परम्परा का अंत।”

गुरु परम्परा शाश्वत है। यह कभी रुक सकती। श्रील प्रभुपाद के अनुसार संकिर्तन आन्दोलन और उसके कारणवश इस्कॉन भविष्य के सिर्फ ६५०० वर्ष तक चलेगा। शाश्वत समय की तुलना में ६५०० वर्ष कुछ भी नहीं होते। ऐसा लगता है कि इस समय अवधि में श्रील प्रभुपाद इस्कॉन में ‘करेंट लिंक’ या ‘वर्तमान गुरु’ बने रहेंगे। जब तक वे या श्रीकृष्ण ६ जुलाई के आदेश को रोक नहीं देते या कोई आकस्मिक घटना (जैसे-सम्पूर्ण विश्व का अणुविक विनाश) होने से इस आदेश का पालन नहीं किया जा सकता। पिछले आचार्य कई वर्षों तक ‘वर्तमान गुरु’ बने रहे, जैसे-हजारों वर्ष (श्रील व्यासदेव) या लाखों वर्ष (निम्नलिखित कथन देखें), हम नहीं समझते कि संकिर्तन आन्दोलन के अंत तक अगर श्रील प्रभुपाद ‘वर्तमान गुरु’ बने रहे तो कुछ मुश्किल आयेगी।

‘जहाँ तक परम्परा प्रणाली का सवाल है : (समय में) लंबी दूरी से आश्चर्य नहीं होना चाहिए....हम भगवत्-गीता में पढ़ते हैं कि सूर्य भगवान को कई लाखों वर्ष पूर्व गीता सिखायी गई थी, पर श्रीकृष्ण ने इस

परम्परा में सिर्फ ३ नाम ही बताये हैं यानी विवस्वान, मनु एवं इक्ष्वाकु। इसलिए इस दूरी से परम्परा को समझने में कोई मुश्किल नहीं आती। हमें प्रधान आचार्य लेने चाहिए और उनका अनुयायी बनना चाहिए। हमारे सम्प्रदाय के आचार्य के आधार पर इन आचार्यों को लेना चाहिए।’

(श्रील प्रभुपादका पत्र दयानन्द को, १२/४/६८)

६ जुलाई का आदेश इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वह यह बतलाता है कि जब तक इस्कॉन रहेगा तब तक इस संस्था के सदस्यों के तो प्रमुख आचार्य श्रील प्रभुपाद ही रहेंगे। केवल श्रील प्रभुपाद या श्रीकृष्ण की साक्षात् मध्यस्थता से ही यह आदेश रोका जा सकता है (वह भी इस अन्तिम आदेश, जो सम्पूर्ण आंदोलन को भेजा गया था, की तरह ही स्पष्ट होना चाहिए)।

अतः जब तक कोई विपरीत आदेश नहीं दिया जाता, तब तक भविष्य की सभी पीढ़ी के शिष्यों को श्रील प्रभुपाद द्वारा ही आध्यात्मिक विज्ञान का प्रतिपादन होगा; क्योंकि हमारी परम्परा में यह एक साधारण घटना है, अतः भय की आवश्यकता नहीं। परम्परा तभी रुक सकती है जब यह आध्यात्मिक विज्ञान ही लुप्त हो जाये। साधारणतया ऐसे अवसर पर धर्म को फिर से स्थापित करने के हेतु श्रीकृष्ण खुद ही अवतरित होते हैं। जब तक श्रील प्रभुपाद की पुस्तकें वितरित होती रहेंगी, तब तक यह विज्ञान रहेगा और हर कोई इसका लाभ उठा पायेगा।

११.” हजारों से चला आ रहा गुरु-शिष्य का संबंध इस ऋत्त्विक प्रणाली से रूक जायेगा।”

असल में ऋत्त्विक प्रणाली असंख्य शिष्यों को धरती के इतिहास के सबसे महान आचार्य श्रील प्रभुपाद से जेडती है। इन शिष्यों का श्रील प्रभुपाद से घनिष्ठ संबंध होगा जो कि मूल रूप से उनकी पुस्तकें पढ़ने और उनकी संस्था में सेवा करने पर आधारित होगा। साथ में बहुत 'शिक्षा गुरु' शिष्य संबंध विद्यमान हो सकते हैं। तो यह प्रणाली गुरु-शिष्य पारम्परिक संबंध को किस तरह रोक देगी ?

दीक्षा गुरु और शिष्य के संबंध को औपचारिक रूप से जोड़ने की रीति को दीक्षा संस्कार कहा जाता है। एक आचार्य दीक्षा संस्कार की प्रक्रियाओं को समय एवं स्थिति के अनुसार बदल सकते हैं, परन्तु नियम तो वही रहता है —

‘श्रीमद् वीरराघव आचार्य, रामानुज सम्प्रदाय की परम्परा में एक आचार्य, ने अपनी टीका में कहा है कि चांडालों को भी विशेष स्थिति में दीक्षा दी जा सकती है। उन्हें वैष्णव बनाने के लिए औपचारिक प्रक्रियाओं में थोड़ा-बहुत फेर-बदल किया जा सकता है।’

(श्रीमद्-भगवतम्, ४ . ८ . ५, भावार्थ)

इसी प्रकार ऋत्त्विक प्रणाली स्वीकारने से एक प्रामाणिक गुरु से दीक्षा लेने के नियम का उल्लंघन नहीं होता।

कुछ लोग सुझाते हैं कि इस्कॉन की गुरु प्रणाली भी भारत के गाँवों में रहने वाले पारम्परिक गुरुओं जैसी होनी चाहिए। यु गुरु एक ही गाँव में रहते थे और कुछ ही शिष्य लेते थे जिन्हें निजी रूप शिक्षा देते थे। चाहे।

सोचने में यह कितना ही अच्छा लगे, इस प्रणाली को विश्व भर में फैले और फैलने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु के संकिर्तन आन्दोलन में अपनाया में नहीं जा सकता। इस आन्दोलन में श्रील प्रभुपाद एक जगद्गुरु है और होंगे। उनके हजारों और लाखों शिष्य और होंगे।

श्रील प्रभुपाद ने एक विश्व्यापी आंदोलन स्थापित किया है जिससे विश्व में कोई भी उनका 'संग' ले सकता, 'सेवा' कर सकता है, 'और' 'प्रश्न' कर सकता है। हम क्यों गाँव की गुरु प्रणाली को इस्कॉन में थोपना चाहे जब श्रील प्रभुपाद ने कभी ऐसा आदेश दिया ही नहीं ?

अगर सब भक्त अपने-अपने गुरु, जिनकी अलग-अलग विचारधारा होती है, अलग-अलग आध्यात्मिक स्तर होता है, के आदेशों का पालन करना चाहेंगे तो एकता कैसे रहेगी ? ऐसी भी क्या प्रणाली कि संपूर्ण आध्यात्मिक जीवन ही दाँव पर लग जाये। श्रील प्रभुपाद ने हमें एक पृष्ठ और सरल दीक्षा प्रणाली दी है जिससे सीधे एक शुद्ध भक्त की शरण ली जा सकती है। हमें मालूम है कि वे हमें कभी मझदार में नहीं छोड़ सकते हैं। इस्कॉन की एकता बनाये रखने का यही एकमात्र मार्ग है।

कुछ भक्तों को लगता है कि एक जीवित एवं सशरीर उपस्थित दीक्षा गुरु की अनुपस्थिति में आध्यात्मिक विज्ञान लुप्त हो जायेगा। परन्तु इस तरह का नियम एक बार भी श्रील प्रभुपाद ने अपनी पुस्तकों में नहीं बतलाया। इस कारण यह हमारा दर्शन नहीं है। जब तक ऋत्त्विक प्रणाली कार्य करती रहेगी, तब तक कई जीवित शिक्षा गुरु सशरीर उपस्थित रहेंगे जो एक जीवित परन्तु

सशरीर अनुपस्थित महाभागवत का सहयोग करेंगे और उनकी ओर से कार्य करेंगे। जब तक यह शिक्षा गुरु कुछ बदलते नहीं, आविष्कार नहीं करते, महत्त्वपूर्ण आदेशों की अवहेलना नहीं करते और कृत्रिम रूप से दीक्षा गुरु नहीं बनते, तब तक यह आध्यात्मिक विज्ञान लुप्त नहीं होगा। अगर इस तरह के दुराचार के फलस्वरूप यह विज्ञान लुप्त हो जाता है तो श्रीकृष्ण निश्चित रूप

से इसे ठिक करने के लिये खुद कुछ करेंगे। हो सकता है कि वे गोलोकधाम के एक निवासी को फिर से एक नई संस्था बनाने के लिए भेजें। हम सबको मिलकर ऐसा करना है जिससे ऐसी नौबत नहीं आये।

१२. “ गुरु परम्परा चलाने के लिए यह ऋत्त्विक प्रणाली एक सामान्य विधि नहीं है। उचित विधि तो यह होती है कि गुरु अपनी सशरीर उपस्थिति में ही शिष्यों का सब कुछ सीखा देते हैं। जैसे ही गुरु यह ग्रह छोड़ देते हैं तो उनके वरिष्ठ शिष्यों का कर्तव्य होता है कि वे खुद गुरु बनें और इस तरह गुरु परम्परा कायम रखें। यह ‘सामान्य’ विधि है।”

दीक्षा गुरु बनने के लिये ‘योग्यता’ और अपने ‘गुरु के आदेश’ को छोड़ भी दें तो भी यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी परम्परा में कई विविधताएँ हैं। ये विविधताएँ मुख्यतः पाँच श्रेणियों में आती हैं :

(क) अंतर : यह तब होता है जब परम्परा के एक आचार्य प्रस्थान करते हैं और तदुपरान्त कोई शिष्य उसी समय से दीक्षा देना चालू नहीं करता। पा दिर जिन्हे भविष्य में आचार्य बनन है उनको अपने गुरु द्वारा कुछ समय तक आज्ञा नहीं मिलती। उदाहरणतया, श्रील भक्तिसिद्धांत स्वरस्वती ठाकूर के सशरीर प्रस्थान उपरान्त हमारे सम्प्रदाय में दूसरी प्रमाणिक दीक्षा बीस वर्ष तक नहीं मिली थी। सौ साल तक के अंतर अपने सम्प्रदाय में असामान्य नहीं है।

(ख) विपरीत अंतर : यह तब होता है जब गुरु की शारीरिक उपस्थिति में ही उनके शिष्य दीक्षा देना प्रारंभ कर देते हैं। उदाहरणतया, ब्रह्माजी अब भी सशरीर उपस्थित हैं तो भी उनके शिष्य को दीक्षा दे चुके हैं।

श्रील भक्तिसिद्धांत स्वरस्वती ठाकूर दोनों श्रील भक्तिविनोद ठाकूर एवं श्रील गौर किशोर दास बाबाजी की सशरीर उपस्थिति में दीक्षा देने लगे थे। जी.आई.आई. (पृष्ठ २३) के अनुसार हमारे सम्प्रदाय में यह एक सामान्य घटना है।

(ग) शिक्षा/दीक्षा कड़ी : ये वे उदाहरण हैं जब एक आचार्य के प्रस्थान उपरान्त कोई शिष्य उन्हें अपना प्राथमिक गुरु स्वीकारता है। यह मालूम करना मुश्किल है कि वह आचार्य शिष्य के दीक्षा गुरु होते हैं या शिक्षा गुरु। श्रील प्रभुपाद ने इनका विश्लेषण नहीं किया है। उदाहरणतया श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकूर शिक्षा गुरु थे या दीक्षा गुरु ? हम उन्हें शिक्षा गुरु बोलना चाहेंगे तो वह एक शुद्ध कल्पना है; क्योंकि श्रील प्रभुपाद ने सिर्फ इतना ही कहा है :

‘श्रील नरोत्तम दास ठाकूर जिन्होंने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकूर को अपना दास स्वीकारा।’
(चैतन्य चरितामृत आदि, १)

‘विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकूर उन्होंने अपना गुरु अपनाया, नरोत्तम दास ठाकूर’।
(श्रील प्रभुपाद श्रीमद्-भागवतम् प्रवचन, १७/४/७६, बम्बई)

ज्यादातर ऐसे शिष्यों का एक सशरीर उपस्थित भक्त के द्वारा दीक्षा संस्कार भी होता है। तो भी सशरीर अनुपस्थित आचार्य उनके दीक्षा गुरु हो सकते हैं। इसी प्रकार ऋत्त्विक संस्कार के उपरान्त ऋत्त्विक या टेंपल प्रेसिडेंट एक शिष्य के शाश्वत दीक्षा गुरु नहीं बन जाते। उपर्युक्त भक्त द्वारा एक सशरीर अनुपस्थित शुद्ध भक्त को अपना सद-गुरु बनाने की आज्ञा लेते थे। उसी प्रकार, श्रील प्रभुपाद के नये संभावित शिष्य दीक्षा गुरु लेने के लिए ऋत्त्विक एवं टेंपल प्रेसिडेंट से आज्ञा लेंगे।

(घ) दीक्षा की प्रक्रिया : ये दीक्षा देने की असामान्य विधियाँ हैं। उदाहरण के लिए – श्रीकृष्ण द्वारा ब्रह्माजी को, श्री चैतन्य द्वारा एक बौद्ध के कान में उपदेश आदि। एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर दीक्षा स्थानान्तरित करना भी इसी श्रेणी में आ सकता है। उदाहरणतया मनु द्वारा इक्ष्वाकू को (भगवद्-गीता, ४.१)।

(ङ) उत्तराधिकारी प्रणाली : अपने सम्प्रदाय में कई उत्तराधिकारी आचार्य प्रणालियाँ हैं। उदाहरण के लिये – श्रील भक्तिविनोद ने 'प्रभावशाली वैष्णव सन्तान' प्रणाली अपनायी। श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने 'स्वतः तेजस्वी आचार्य' प्रणाली अपनायी। श्रील प्रभुपाद ने 'ऋत्त्विक – दीक्षा संस्कार के लिए आचार्य के प्रतिनिधि प्रणाली' अपनायी जिसमें ए.सी. भक्तीवेदांत स्वामी प्रभुपाद के शिष्य होंगे। जी.वी.सी. द्वारा वर्तमान में 'बहुल आचार्य परम्परा प्रणाली' लागू की हुई है।

यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी आचार्य दीक्षा देने के लिए अपनी अलग प्रक्रिया अपना सकते हैं और अपनाते हैं। इसलिए किसी एक प्रणाली को 'सामान्य' बताना असामान्य बात होगी।

१३. " अगर हम ऋत्त्विक प्रणाली अपना लेते हैं तो हम किसी भी पिछले आचार्य से दीक्षा ले सकते हैं। "

इसके विरोध में दो तर्क दिये जा सकते हैं –

(क) श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर या पिछले किसी आचार्य ने ऋत्त्विक प्रणाली 'इस समय से' लागू नहीं की थी।

(ख) हमें 'वर्तमान गुरु' को ही अपनाना होगा।

'श्रीमद्-भागवतम् के मूल उपदेशों को समझने के लिए गुरु परम्परा के वर्तमान गुरु को ही अपनाना चाहिए।'

(श्रीमद्-भागवतम्, २.६.७., भावार्थ)

यह स्वतः ही स्पष्ट है कि श्रील प्रभुपाद हमारे सम्प्रदाय आचार्य हैं। उनकी पुस्तकें, उनके बनाये हुये नियम, उनके आश्वासनों को ही सही एवं पूर्ण मानकर हमने अपना आध्यात्मिक जीवन संपूर्ण रूप से उनके उपदेशों पर निर्भर किया हुआ है। आध्यात्मिक जीवन के प्रारंभ से ही हर भक्त का उनसे संबंध स्थापित हो जाता है। उनके निदेशों को हम थोड़ा सा भी नहीं बदल सकते। वे श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के सशरीर प्रस्थान उपरान्त उनके आदेश पर ही आचार्य बने हैं। अतः श्रील प्रभुपाद ही हमारे वर्तमान गुरु हैं। वे ही दीक्षा लेने के लिए उपयुक्त भक्त हैं।

१४. " 'वर्तमान गुरु' होने के लिए सशरीर उपस्थिति अनिवार्य है। "

श्रील प्रभुपाद ने ऐसा निर्देश काभी नहीं दिया।

विश्लेषण : क्या गुरु सशरीर अनुपस्थिति हुए भी वर्तमान हो सकते हैं ?

(क) 'वर्तमान गुरु' शब्द केवल एक बार ही श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में गया है। इसके साथ 'सशरीर उपस्थिति' का उपयोग नहीं किया गया है। अगर सशरीर उपस्थिति अनिवार्य होती तो उसको जरूर सम्बोधित किया होता।

(ख) शब्दकोश में 'वर्तमान' के अर्थ में सशरीर उपस्थिति सम्मिलित नहीं है।

(ग) शब्दकोश के इस अर्थ के अनुसार सशरीर अनुपस्थित गुरु और उनकी पुस्तकों को भी 'वर्तमान' से संबोधित किया जा सकता है।

(घ) श्रील प्रभुपाद की पुस्तके पढ़ने और उनके वर्तमान 'इस्कॉन' में सेवा करने से ही वर्तमान गुरु की संगत पाने का कार्य परिपूर्ण हो सकता है।

'श्रीमद-भागवतम् के मूल उपदेश समझने के लिए गुरु परम्परा के वर्तमान गुरु को ही अपनाना चाहिए।'
(श्रीमद-भागवतम्, २ . ६ . ७, भावार्थ)

(ङ) श्रील प्रभुपाद 'इमिडिएट आचार्य', 'वर्तमान आचार्य' और 'करंट लिंक' (वर्तमान गुरु) को पर्यायवाची की तरह इस्तेमाल करते हैं। 'इमिडिएट' शब्द का मतलब होता है —

'विदाउट इंटरवैनिंग मीडियम' — अति सन्निहित, 'क्लोसेस्ट ऑर मोस्ट डाइरेक्ट इन रिलेशनसिप'— अनन्तरित या अति समीप का। यह प्रतीत होता है कि बिना किसी की मध्यस्थता के श्रील प्रभुपाद से सीधा संबंध स्थापित किया जा सकता है। (जैसा इस्कॉन के हर भक्त को व्यवहारिक ज्ञान है) शारीरिक उपस्थिति या अनुपस्थिति से इस संबंध को कोई फर्क नहीं पड़ता।

(च) 'वर्तमान गुरु' एवं शारीरिक उपस्थिति /अनुपस्थिति में कोई सीधा संबंध इसलिए नहीं लगता क्योंकि ऐसे भी कई

उदाहरण हैं जब गुरु की शारीरिक उपस्थिति में भी कुछ शिष्यों ने दीक्षा दी है। दूसरे शब्दों में, अगर अपने गुरु की सशरीर उपस्थिति में भी 'वर्तमान गुरु' बना जा सकता है तो एक आचार्य अपनी सशरीर अनुपस्थिति में भी वर्तमान गुरु हो सकता है ?

सारांश में, हमें ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला कि 'वर्तमान गुरु' का शारीरिक उपस्थिति या अनुपस्थिति से कोई संबंध हो।

१५ . “ श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के शारीरिक प्रस्थान उपरान्त श्रील प्रभुपाद के कोई भाई स्वयं गुरु बन गये थे। तो श्रील प्रभुपाद के शिष्य भी ऐसा करे तो क्या गलत है ? “

दीक्षा गुरु बनने का ढोंग करने से श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के शिष्य उनके गुरु के आदेश के बिल्कुल खिलाफ गये थे। श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर का अंतिम आदेश था जी.बी.सी. बनन और स्वतः तेजस्वी आचार्य की प्रतिज्ञा करना। श्रील

प्रभुपाद ने इस विषय पर अपने गुरु भाईयों की कड़ी निन्दा की थी, और कहा था कि वे प्रचार कार्य और दीक्षा देने के लिए बेअसर हो गये हैं।

‘मेरे गुरु भाइयों में कोई भी आचार्य बनने के योग्य नहीं है।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र रूपानुगा को, २८/४/७४)

‘तुम जान लो कि वह (बॉन महाराज) एक मुक्त आत्मा नहीं है। अतः वह किसी को कृष्ण भावनामृत की दीक्षा नहीं दे सकता। इसके लिये उच्च अधिकारियों द्वारा विशेष आशीर्वाद मिलना आवश्यक है।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र जनार्दन को, २६/४/६८)

‘अगर हर कोई दीक्षा देता रहेगा तो प्रतिकूल फल मिलेगा। जब तक ऐसा चलेगा, तब तक निराशा ही मिलेगी।’

(श्रील प्रभुपाद, फाल्गुन कृष्ण पंचमी, श्लोक २३)

हाल ही के अनुभव से दिख जाता है कि इनमें से एक व्यक्ति श्रील प्रभुपाद के प्रिय आंदोलन को कितनी क्षति पहुँचा सकता है। दूर से आदर देना ही उचित व्यवहार है। निश्चित रूप से उनको अपने गुरु की आज्ञा का पालन करने के उदाहरणस्वरूप नहीं लिया जा सकता। उन्होंने अपने गुरु के आंदोलन का नाश कर दिया और उन्हें इजाजत दी तो इस्कॉन के साथ भी वही करेंगे।

गौडीय मठ की गुरु प्रणाली ही म • आ • स • सि • (बहुल आचार्य उत्तराधिकारी प्रणाली) के लिये पूर्व उदाहरण है यानी कि वह भी अपने संस्थापकाचार्य की सीधी प्रकट इच्छा के विपरीत लागू की गई है।

१६. ”जब श्रील प्रभुपाद कहते हैं कि वे आचार्य न बनें तो उनका अभिप्राय बड़े ‘आ’ के आचार्य से था। यह आचार्य पूरी संस्था के निर्देशक होते हैं।”

श्रील प्रभुपाद कहाँ बड़े ‘आ’ और छोटे ‘आ’ के दिक्षा आचार्य में अंतर बतलाते हैं ? वे यह कहाँ बतलाते हैं कि एक किस्म के दिक्षा

गुरु किसी अपंगता के नाते यह नहीं कर पाते ?

१७. ”षह एक सामान्य धारणा है कि तीन प्रकार के आचार्य होते हैं। इस्कॉन में सब यह मानते हैं।”

परन्तु श्रील प्रभुपाद ने यह धारणा कभी नहीं सिखलाई। यह मनोधारणा प्रधुम्न दास ने सत्स्वरूप दास गोस्वामी को ७ अगस्त १६७८ को लिखे पत्र द्वारा इस्कॉन में फैलाई थी। यह पत्र ‘अण्डर माय ऑर्डर’ (मेरे आदेश से) लेख में फिर प्रकाशित किया गया था और यह पत्र ही लेख का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार है। यही लेख जी • आई • आई • सिद्धांत का मूल स्रोत है। इस लेख के कारण इस्कॉन की ‘जोनल आचार्य सिस्टम’ (क्षेत्रीय आचार्य प्रणाली) रूपान्तरित होकर वर्तमान की ‘मल्टीपल आचार्य सक्सेसर सिस्टम’ (बहुल आचार्य उत्तराधिकारी प्रणाली) बनी थी।

‘मैंने आचार्य की यह परिभाषा ७ अगस्त १६७८ को प्रधुम्न द्वारा सत्स्वरूप दास गोस्वामी को लिखे पत्र से ली है। इस पत्र के सावधानीपूर्ण परीक्षण के लिये अब पाठक परिशिष्ट देखें।’

(अण्डर माय ऑर्डर, रविन्द्र दास, अगस्त १६८५)

प्रघुम्न,इस पत्र में आचार्य की परिभाषा तीन प्रकार की बतलाते हैं —

- (१) जो आचार्य प्रचार करते हैं।
- (२) जो एक शिष्य को दीक्षा देते हैं।
- (३) संस्था के आध्यात्मिक नायक जिनकी नियुक्ति पिछले आचार्य द्वारा की गयी हो।

पहली परिभाषा हम स्वीकारते हैं,क्योंकि श्रील प्रभुपाद ने भी इसका प्रयोग किया था। यह परिभाषा कोई भी प्रचारक पर लागू होती है चाहे वह शिक्षा गुरु हो या दीक्षा गुरु।

दूसरी परिभाषा में प्रघुम्न बताते हैं कि इस तरह के आचार्य शिष्यों को दीक्षा दे सकते हैं और इन्हें आचार्यदेव से संबोधित किया जा सकता है,परन्तु स्वयं के शिष्यों द्वारा ही :

‘जो भी दीक्षा दे या गुरु बने वह ‘आचार्यदेव’ आदि से संबोधित किया जा सकता है - उनके शिष्यों द्वारा ही। ‘जिसने भी उन्हें गुरु स्वीकारा है उसे गुरु को पूरा सम्मान देना चाहिए। पर यह नियम उन पर लागू नहीं होता जो उनके शिष्य नहीं हैं।’

(प्रघुम्न,७/८/७८)

यह सब मनगढ़ंत है। कही भी श्रील प्रभुपाद ऐसे दीक्षा गुरु का वर्णन नहीं करते जिनकी शुद्ध स्थिति केवल उनके शिष्यों द्वारा ही स्वीकारी जाए। (समस्त विश्व द्वारा या हमारे सम्प्रदाय के दूसरे वैष्णवों द्वारा भी नहीं) हमें यह देखना चाहिए कि खुद श्रील प्रभुपाद ने

‘आचार्यदेव’ का वर्णन किस तरह किया है। निम्नलिखित कथन आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान (अध्याय दो) में प्रकाशित श्रील प्रभुपाद के व्यासपूजा अभिभाषण से है जो वे अपने गुरु श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के लिए पढ़ रहे हैं —

“जैसा कि हमें प्रामाणिक शास्त्रों से ज्ञात होता है,गुरु अथवा आचार्यदेव वैकुण्ठ जगत (परम-जगत) के सन्देश को प्रस्तुत करते हैं....

‘....क्योंकि जब हम गुरुदेव अथवा आचार्यदेव के मूल सिद्धांतों की चर्चा करते हैं तो इन सिद्धांतों का विश्वव्यापी प्रयोग होना चाहिए।’

‘श्रील आचार्यदेव,जिनको हम अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए आज रात यहाँ एकज हुए हैं,वे किसी साम्प्रदायिक संस्था के गुरु नहीं हैं। दूसरे शब्दों में,वे सत्य को भिन्न-भिन्न मतों से प्रस्तुत करने वालों में से नहीं हैं। इसके विपरीत वे तो जगद्गुरु हैं,अर्थात् हम सबके गुरु हैं।’

‘आचार्यदेव’ शब्द की श्रील प्रभुपाद द्वारा परिभाषा तथा उपयोग,प्रघुम्न की परिभाषा से बिल्कुल उल्टा है। प्रघुम्न की परिभाषा से समझ पड़ता है कि ‘आचार्यदेव’ शब्द से उन व्यक्तियों को भी संबोधित किया जा सकता है जो उस स्तर पर हैं ही नहीं। इस प्रकार वह दीक्षा गुरु के स्तर को नीचा करते हैं।

आचार्यदेव से उन्ही को संबोधित करना चाहिये जो वास्तविक रूप में ‘हम सबके गुरु’ हो,जो समस्त संसार द्वारा पूजे जाने चाहिए।

‘....वह साक्षात् भगवान और श्री नित्यानन्द प्रभु के प्रामाणिक प्रतिनिधि की तरह जाने जाते हैं। ये गुरु आचार्यदेव कहलाते हैं।
(चैतन्य चरितामृत आदि, १.४६)

तीसरी परिभाषा में प्रघुम्न समझाते हैं कि आचार्य शब्द आध्यात्मिक संस्था के निर्देशक के लिए इस्तेमाल होता है।

‘यह हर कोई नहीं हो सकता। यह केवल वह है जो पिछले आचार्य द्वारा आध्यात्मिक संस्था के निर्देशक के लिए दूसरों के ऊपर उत्तराधिकारी घोषित हुआ हो....समस्त गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में यह एक कठोर परम्परा है।’

(प्रघुम्न का पत्र सतस्वरूप दास गोस्वामी को, ७/८/७८)

हम निश्चित ही इस तथ्य से सहमत हैं कि दीक्षा देने के लिये पिछले आचार्य द्वारा आदेश मिलना चाहिए।
(यह तथ्य दूसरी परिभाषा में बतलाया ही नहीं गया है।)

‘गुरु परम्परा में आ रहे एक प्रामाणिक गुरु से ही, जिन्हें अपने पूर्व आचार्य द्वारा गुरु बनने का आदेश मिला हो, दीक्षा लेनी चाहिए।’
(श्रीमद्-भागवत, ४.८.५४ भावार्थ)

परन्तु, यह ‘आध्यात्मिक संस्था’ की गद्दी लेने से कैसे संबोधित है। श्रील प्रभुपाद अपने गुरु महाराज की संस्था से विलकुल अलग एक दूसरी संस्था के आचार्य हैं। प्रघुम्न के तर्क के अनुसार श्रील प्रभुपाद पर परिभाषा दो ही लागू होनी चाहिए। जो भी ‘कठोर परम्परा’ प्रघुम्न बता रहे हैं वह श्रील प्रभुपाद ने कभी भी समझायी नहीं अतः हम उसको आराम से नकार सकते हैं। पत्र में थोड़ा और नीचे चलने से हमें समझ आता है कि प्रघुम्न दास के धूर्त तर्कों की उत्पत्ति कहाँ से है —

‘इसके बजाय दूसरे गौडीय मठों में, अगर कोई गुरु भाई आचार्य की पदवी पर भी है, तब भी वह ज्यादातर नम्रता के कारण एक पतले कपड़े का आसन ही इस्तेमाल करता है, और कुछ नहीं।’

श्रील प्रभुपाद के कोई भी गुरु भाई प्रामाणिक आचार्य नहीं हैं। यथार्थ की नम्रता होती तो श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर के आदेश का पालन करते, अपनी अप्राकृतिक पदवियों का छोड़, श्रील प्रभुपाद की उच्चतम स्थिति को समझ कर असली जगद्गुरु की शरण में चल आते। दुर्भाग्यवश, गौडीय मठ के कुछ ही सदस्यों ने ऐसा किया है। यह तथ्य कि प्रघुम्न इन व्यक्तियों का उदाहरण तौर पर प्रस्तुत करते हैं वास्तव में हमारे सच्चे आचार्य की स्थिति को निचा दिखाना है।

‘जहाँ तक भक्ति पुरी, तीर्थ महाराज आदि का सवाल है, वे मेरे गुरु भाई हैं अतः उन्हें आदर देना चाहिए। परन्तु इनसे किसी तरह का घनिष्ठ संबंध नहीं रखो; क्योंकि यह मेरे गुरु-महाराज के आदेशों के विपरीत गये हैं।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र प्रघुम्न को, १७/२/६८)

यह एक शर्मनाक बात है कि प्रघुम्न प्रभु ने अपने गुरु महाराज के स्पष्ट निजी आदेश की अवहेलना की। यह और भी ज्यादा शर्मनाक तथ्य है कि उनकी पथभ्रष्ट धारणाओं ने इस्कॉन की वर्तमान गुरु प्रणाली के सिद्धांत को प्रतिरूप दिया है।

इस प्रकार,जब श्रील प्रभुपाद कहते हैं कि उनके कोई भी गुरु आचार्य बनने के योग्य नहीं है तब यह मायने नहीं रखता कि पहली परिभाषा ठीक है या तिसरी। अगर वे पहली परिभाषा अनुसार योग्य नहीं थे यानी उनका आचार उचित नहीं था तो वे स्वतः ही तिसरी परिभाषा के अनुसार अयोग्य हो जाते हैं। अतः वे दीक्षा नहीं दे सकते। और अगर वे तिसरी परिभाषा अनुरूप योग्य नहीं थे तो उनको आदेश नहीं मिला यानी वे दीक्षा गुरु नहीं दे सकते।

सारांश में :

(क) सारे प्रचारकों को परिभाषा एक के आचार्य यानी शिक्षा गुरु बनने का प्रयास करना चाहिए।

(ख) परिभाषा दो का विश्लेषण पूर्ण रूप से बनावटी है। किसी को भी चाहे वह शिष्य हो या नहीं, आचार्यदेव को एक सामान्य व्यक्ति समझना निषिद्ध है। अगर वे वास्तव में सामान्य व्यक्ति हैं तो वे किसी को भी दीक्षा नहीं दे सकते और आचार्यदेव नहीं कहलाये जा सकते। इसके अलावा इस परिभाषा में अपने गुरु से विशेष आज्ञा लेने की बात नहीं कही गई है। बिना ऐसी आज्ञा के कोई भी दीक्षा नहीं दे सकता।

(ग) परिभाषा तीन के आचार्य ही दीक्षा दे सकते हैं यानी जिन्हें अपने सम्प्रदाय के आचार्य द्वारा आज्ञा मिली है। दीक्षा मिलने की आज्ञा उपरान्त वह एक संस्था के निर्देशक बनते हैं या नहीं इससे फर्क नहीं पड़ता।

इस्कॉन में समस्त भक्तों को परिभाषा एक के आचार्य बनने को कहा जाता है जिससे वे आचार्य द्वारा प्रचार करते हैं यानी शिक्षा गुरु बनते हैं। इस तरह के आचार्य बनने के लिए एक अच्छी शुरुआत यह होगी कि हम अपने गुरु की हर आज्ञा का पालन करना आरम्भ करें।

१८. “ आचार्य की परिभाषा तय करने का विवाद ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं लगता। केवल इसके कारण इस्कॉन को कोई हानि थोड़े ही हुई होगी।”

असल में, दीक्षा गुरु की इस मनगढत प्रणाली ने इस्कॉन में बहुत भ्रम उत्पन्न किया है। कुछ इस्कॉन गुरु कहते हैं कि श्रील प्रभुपाद के बजाय अब वे ही दीक्षा गुरु हैं और नये शिष्यों को वे ही भगवद्धाम वापस ले जा रहे हैं। कुछ कहते हैं कि वे शिष्यों को केवल श्रील प्रभुपाद के निकट ले जा रहा है जो इन्हें भगवद्धाम ले जायेंगे (करीब-करीब ऋत्तिक प्रणाली जैसे ही) कुछ कहते हैं कि श्रील प्रभुपाद ने ग्यारह ऋत्तिक नियुक्त किये थे जो उनके उपरान्त छोटे ‘आ’ आचार्य में रूपान्तरित हो जाने थे। और दूसरे कहते हैं कि ये ग्यारह ही छोटे ‘आ’ के आचार्य नहीं बन जाने थे परन्तु श्रील प्रभुपाद के सब शिष्य (महिलाओं को छोड़) आचार्य बनने चाहिए थे।

जी.आई.आई. खे अनुसार खुद जी.बी.सी. भी स्पष्ट नहीं है कि वे किस तरह के गुरु ‘अनमोदित’ कर रही है।

जी.बी.सी. मानती है कि सम्प्रदाय के आचार्य एक मुहर द्वारा प्रामाणित नहीं हो जाते (जी.आई.आई.,विषय ६) पर तो भी हर साल गौर पूर्णिमा को मायापुर में वह बिल्कुल ऐसा ही कार्य करती है। अब तक करीब सौ दीक्षा गुरु हैं जिनको ‘नो ऑब्जेक्शन’ (कोई आपत्ति नहीं) प्रमाण-पत्र मिला हुआ है। ये सब गुरु साक्षात् हरि जैसे ही पूजे जाते हैं। सब शिष्यों के लिए जी.बी.सी. का यही निर्देश है (जी.आई.आई.,विषय १८,पृष्ठ १५) हमारी गुरु परम्परा केवल महाभागवतों से बनी है और हजारों वर्ष पूर्व परुषोत्तम भगवान द्वारा शुरू की गयी थी। इन दीक्षा गुरुओं को ऐसी परम्परा का वर्तमान गुरु कहा जाता है।

‘भक्त को चाहिए कि वह श्रील प्रभुपाद के प्रतिनिधि की शरण में जाये। ये प्रतिनिधि गुरु परम्परा के ‘वर्तमान’ आचार्य है।
(जी .आई .आई ., पृष्ठ ३४)

उसी समय संभावित शिष्यों को चेतावनी दी जाती है कि इस्कॉन की सहमती....

‘.....को अनुमोदित गुरु आध्यात्मिक प्रगति का मापदण्ड नहीं मानना चाहिए।’
(जी .आई .आई ., पृष्ठ १५, सेक्शन २ . २)

एक और जगह हमें फिर चेतावनी दी जाती है :

“ श्रील प्रभुपाद का ‘आदेश’ था गुरु परम्परा को बढ़ाने के लिए नये शिष्यों को दीक्षा देना। अगर किसी भक्त को इस आदेश का पालन करने की अनुमति दी जाती है तो इसका यह प्रमाण नहीं कि यह भक्त ‘उत्तम अधिकारी’, ‘शुद्ध भक्त’ बन गया है या उसने आध्यात्मिक का एक विशिष्ट स्तर पा लिया है।”

(जी .आई .आई ., पृष्ठ १५)

मंदिर के सब भक्तों द्वारा उनकी पूजा नहीं होगी सिर्फ उनके शिष्यों द्वारा एक निजी स्थान पर।

(जी .आई .आई ., पृष्ठ ७)- (प्रधुम्न की आचार्यदेव की परिभाषा)

हमने पहले ही सिद्ध कर दिया है कि एक आज्ञा प्राप्त महाभागवत ही प्रामाणिक गुरु बन सकते हैं (हमने यह भी दिखवा दिया है कि स्पष्ट ‘आदेश’ तो ऋत्विक् बनने या शिक्षा गुरु बनने के लिए ही था) अतः किन्हीं को ‘दीक्षा गुरु’ या ‘वर्तमान गुरु’ कहने का अर्थ है कि वे ‘उत्तम अधिकारी’, ‘शुद्ध भक्त’, बड़े ‘आ’ परिभाषा तीन के आचार्य हैं।

यह एक शोचनीय तथ्य है कि जी.बी.सी. दीक्षा गुरु को पहले ‘अनमोदन’ करती है या ‘कोई आपत्ति नहीं’ करती और तदुपरान्त अगर पथभ्रष्ट हो जाये तो कोई उत्तरदायित्व या दोष नहीं लेती। हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि श्रील प्रभुपाद ने इस्कॉन को एक जूए की तरह नहीं बनाया है, जिसमें अपनी आध्यात्मिक जिदंगी

ही दाँव पर लग जाये। जी.बी.सी. इतना तो कर सकती है कि जब तक वह किसी गुरु के पीछे सौ प्रतिशत न खड़ी हो, तब उस पर मोहर नहीं लगाए। यह इच्छा उचित है क्योंकि हम श्रील प्रभुपाद के पीछे सौ प्रतिशत खड़े हैं।

हाल ही में जयअद्वैत स्वामी ने उपर्युक्त विषय पर जी.बी.सी. की अनिश्चित धारणाओं पर टिप्पणी की —

‘नियुक्त शब्द कही भी इस्तेमाल नहीं हुआ है। परन्तु ‘दीक्षा गुरु के उम्मीदवार होते हैं’, मतदान किया जाता है, और जो भक्त इस प्रक्रिया को पार कर लेते हैं वे ‘इस्कॉन अनुमोदित’ या ‘इस्कॉन प्रमाणित’ गुरु बन जाते हैं। आपका विश्वास बढ़ाने के लिए एक तरफ जी.बी.सी. आपको इस्कॉन के एक प्रमाणित गुरु से दीक्षा लेने और भगवान समान पूजा करने के लिये उत्साहित करती है दूसरी ओर जब इस्कॉन प्रमाणित गुरु गिर जाते हैं तो सम्बन्धित कानूनों की विस्तृत प्रणाली को लागू किया जाता है। परन्तु इन सब कानूनों और

प्रस्तावनाओं के बावजूद अगर हमें यह विचार करने पर मजबूर होना पड़े कि इस्कॉन में गुरु का कार्य क्या होना चाहिए तो हमें गलत मत समझिए।

(‘ऋत्त्विक लोग कहाँ सहे है’, जयअद्वैत स्वामी, १६६६)

जब हम इस्कॉन के गुरुओं के निन्दनीय कार्य देखते हैं तो आश्चर्य नहीं होता कि इस विषय पर इतना भ्रम है। जयअद्वैत स्वामी के हैं लेख से एक बार फिर :

तथ्य : इस्कॉन के गुरुओं ने कई गुरु भाईयों और गुरु बहनों को संस्था से खदेडा है।

तथ्य : इस्कॉन के गुरुओं ने इस्कॉन की कुछ संपत्ति का अपने यश और ऐशो-आराम के लिये गवन और कुप्रयोग किया है।

तथ्य : इस्कॉन गुरुओं ने पुरुष, महिलाओं और शायद बच्चों के साथ अवैध मैथुन किया है।

तथ्य : (...आदि, आदि)

(‘ऋत्त्विक लोग कहाँ सहे है’, जयअद्वैत स्वामी, १६६६)

इस्कॉन में नये भक्तों को बतलाया जाता है कि श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों और उपदेशों के अनुसार अपने दीक्षा गुरु को इस्कॉन के योग्य गुरुओं में से ढूँढना खुद का कार्य है। परन्तु अगर कोई भक्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ‘सशरीर उपस्थित’ कोई भी गुरु योग्य नहीं है अतः वह श्रील प्रभुपाद को ही दीक्षा गुरु बनना चाहता है तो उसे संस्था से कूरता से निकाल दिया जाता है। क्या यह उचित है ? आखिर वह जी.बी.सी. के ही आदेश का पालन कर रहा है। क्या उसे उचित निष्कर्ष पर आने के लिये दंडित किया जाए जब इतने प्रमाण मिलते हैं कि श्रील प्रभुपाद भी यही चाहते हैं।

जब जी.बी.सी. ने गुरुओं को लाइन में रखने के लिए खुद एक विस्तृत दण्ड विधान बनाया है तब कैसे किसी शिष्य को वर्तमान गुरुओं में पूर्ण श्रद्धा हो पायेगी ? और तो और इस दण्ड विधान को उन कताबों में कही नहीं बतलाया गया है जिनको पढकर इस निष्कर्ष पर पहुँचना है ? दूसरे को भ्रमित करने का इससे अच्छा उदाहरण कहाँ मिलेगा ?

श्रील प्रभुपाद के स्पष्ट अन्तिम आदेश का पालन करना ही सबसे सुरक्षित मार्ग होगा। कौन आपत्ति करेगा कि पहले जैसे ही इस्कॉन के एकमात्र दीक्षा गुरु श्रील प्रभुपाद ही हों ?

१६. ”इस्कॉन जर्नल १६६० के अनुसार श्रील प्रभुपाद के कुछ गुरु भाई वास्तव में आचार्य थे।”

यह किसने कहा ?

- उस व्यक्ति ने जिसने कहा था कि वैष्णव शब्दकोश में ऋत्विक् शब्द का अस्तित्व ही नहीं है। (इस्कॉन जर्नल, पृष्ठ २३)। जबकी श्रीमद्-भागवतम् में इस शब्द का कोई बार प्रयोग हुआ है। स्वयं श्रील प्रभुपाद ने भी ६ जुलाई के पज में इस शब्द का उपयोग किया है।
- उस व्यक्ति ने जिसने यह संकेत दिया था कि श्रील प्रभुपाद को भी दीक्षा देने की आज्ञा नहीं मिली थी :
'भक्तसिद्धांत सरस्वती ने न तो कभी ऐसा कहा न कोई दस्तावेज छोड़ा जिसमें उन्होंने कहा कि स्वामीजी श्रील प्रभुपाद) गुरु होंगे।'
(इस्कॉन जर्नल, १६६०, पृष्ठ २३)
- उस व्यक्ति ने जिसने कहा था कि तीर्थ, माधव एवं श्रीधर महाराज प्रमाणिक आचार्य थे, जब श्रील प्रभुपाद ने कहा था कि उनमें से कोई भी योग्य नहीं था :

'पर हमारे सम्प्रदाय में एक प्रणाली है। इसके कारण तीर्थ महाराज, माधव महाराज, श्रीधर महाराज, हमारे गुरुदेव, स्वामीजी-स्वामीजी भक्तिवेदांत स्वामी-सभी आचार्य बने।' (इस्कॉन जर्नल, १६६०, पृष्ठ २३)

उपर्युक्त कथन और श्रील प्रभुपाद के निम्नलिखित कथन में अन्तर देखिए :

'भक्त विलास तीर्थ हमारी संस्था के बहुत वरूद्ध है और भक्ति के बारे में उसे कोई ठीक जानकारी नहीं है। वह दूषित है।
(श्रील प्रभुपाद का पज सुखदेव को, १४/११/७३)

और उन्होंने दूसरे 'आचार्यों' के लिए कहा था —

'मेरे समस्त गुरु भाइयों में कोई भी आचार्य बनने के योग्य नहीं है।'
(श्रील प्रभुपाद का पज रूपानुगा को, २८/४/७४)

- वही व्यक्ति जिसने हाल में नई जानकारी उपलब्ध कराई है कि श्रील प्रभुपाद ने सब कुछ नहीं दिया। उसके अनुसार पूर्ण जानकारी के लिये एक रसिक गुरु की शरण में जाना चाहिए।

२०. "श्रील प्रभुपाद ने कभी-कभी अपने गुरु भाइयों को अच्छा बताया था।"

यह सबको ज्ञात है कि श्रील प्रभुपाद अपने गुरु भाइयों से नम्रतापूर्वक व्यवहार करते थे। यहाँ तक कि एक बार तो उन्होंने श्रीधर महाराज को अपने शिक्षा गुरु भी कहा था। श्रील प्रभुपाद एक स्नेहशील व्यक्ति थे। वे हर समय अलग-अलग विधियों से अपने गुरु-भाइयों को संकिर्तन आन्दोलन में सम्मिलित करना चाहते थे। परन्तु हमें जानना चाहिए कि अगर वे प्रामाणिक आचार्य होते तो श्रील प्रभुपाद कभी भी उनके लिए गलत नहीं बोलते। प्रामाणिक दीक्षा गुरुओं को आज्ञा का उल्लंघन करने वाला, ईर्षालु साँप, कुत्ता, सूअर, कीड़ा आदि बोलना एक महाअपराध होता है और श्रील प्रभुपाद ने ऐसा कभी नहीं किया होता। निम्नलिखित वार्ता लाप श्रील प्रभुपाद और भावानंदा के बिच हुआ था, जिसमें वे तीर्थ महाराज द्वारा निकाली गई एक पुस्तिका का विश्लेषण कर रहे हैं

- भावनन्दा : अब बड़े अक्षरों में 'आचार्यदेव जिडंडी स्वामी श्रील भक्तिविलास तीर्थ महाराज । सभी विद्वान लोग भारत के शोचनिय समय के बारे में जानते थे जब हिन्दू धर्म खतरे में था....'
- श्रील प्रभुपाद : (हँसते हुए)....यह पागलपन है ।
- भावनन्दा : '....सही समय पर, उन्हें (श्रील भक्तिसिद्धांत को) एक महापुरुष मिले,जिन्होंने उत्साहपूर्वक कष्ट उठाते....'
- श्रील प्रभुपाद : 'जरा देखे तो ! 'उन्हें एक महापुरुष मिले 'वह' यह महापुरुष है । वह इसका प्रमाण भी देगा । (बाद में) कोई इसे स्वीकारता नहीं है....उसकी महानता कहाँ है ? कौन इसे जानता है ? देखे तो । तो अपने आपको महापुरुष घोषित करने का वह यह उपाय बना रहा है ।.... (तिथे महाराज) बहुत ईर्षालु है । ये दृष्ट लोग कुछ गडबड कर सकते है ।'

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप,१६/१/७६,मायापुर)

प्रामाणिक आचार्य कभी भी ईर्षालु एवं दृष्ट आदि नहीं बतलाये जा सकते । दुःखुद तो यह है कि गौडीय मठ के कुछ लोग अब भी कुछ न कुछ गडबड करते रहते है । दूर से आदर देना ही सबसे सुरक्षित पद्धति है ।

२१. "प्रामाणिक आचार्य का आध्यात्मिक स्तर ज्यादा ऊँचा होने की जरूरत नहीं है क्योंकि वे कई बार गिर भी जाते है ।"

श्रील प्रभुपाद बिल्कुल विपरित कहते है :

'एक प्रामाणिक गुरु,आदिकाल से गुरु परम्परा में स्थित है,और वह भगवान के कथनों से कभी भी पथभ्रष्ट नहीं हो सकते ।'
(भगवद्-गीता,४ . ४२,भावार्थ)

२२. "पिछले आचार्य तो वह भी बतलाते है कि अगर गुरु पथभ्रष्ट हो जाये तो क्या करना चाहिए ।"

ऐसे पथभ्रष्ट गुरु,परिभाषा अनुसार,आदिकाल से गुरु परम्परा के सदस्य नहीं हो सकते । बल्कि,वे बद्ध और स्वयं अधिकार प्राप्त कुल गुरु हो सकते है जो दीक्षा गुरु बनने का स्वांग रच रहे हों । गुरु परम्परा के प्रामाणिक सदस्य कभी भी पथभ्रष्ट नहीं हो सकते ।

'भगवान हर समय भगवान है,गुरु हर समय गुरु ।'
(आत्मसाक्षात्कार का वज्ञान,अध्याय २)

'अगर वो ढोंगी है,तो वह गुरु कैसे हो सकते है ।'

(आत्मसाक्षात्कार का वज्ञान, अध्याय २)

‘शुद्ध भक्त माया के चंगुल से हर समय मुक्त रहते हैं।’

(श्रीमद्-भागवतम्, ५ . ३ . १४)

‘एक उत्तम अधिकारी कभी भी गिर नहीं सकता।’

(चैतन्य चरितामृत, मध्य, २२ . ७१)

‘गुरु हर समय मुक्त आत्मा होते हैं।’

(श्रील प्रभुपाद का पञ्च तमाल कृष्ण को, २१/६/७०)

श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है कि औपचारिक रूप से प्रमाणिक कोई गुरु पथभ्रष्ट हो गया हो। शुक्राचार्य का उदाहरण प्रमाणस्वरूप दिया जाता है। परन्तु यह उदाहरण उचित नहीं है क्योंकि वह प्रमाणिक गुरु परम्परा के सदस्य थे ही नहीं। ब्रह्मा जी का अपनी पुत्री के साथ लीला का भी उदाहरण दिया जाता है। परन्तु श्रीमद्-भागवतम् में यह लीला उनके सम्प्रदाय के प्रधान बनने से पहले की है। यहाँ तक कि श्रील प्रभुपाद से जब उनके शिष्य नितार्ई ने आचार्य के गिरने का यह उदाहरण प्रस्तुत किया था तो श्रील प्रभुपाद बहुत अप्रसन्न हो गये थे। उनके अनुसार केवल अप्रमाणिक गुरु ही भव्यता और सुन्दरियों द्वारा लोभित हो सकते हैं।

इन सब निर्देशों के उपरान्त भी जी.वी.सी. की पुस्तक जी.आई.आई. में एक पूर्ण भाग यही बतलाता है कि अपने गुरु के पथभ्रष्ट होने शिष्य को क्या करना चाहिए। उस अध्याय की शुरुआत में लिखा हुआ है कि वर्तमान गुरु से ही शिक्षा लेनी चाहिये न कि उन्हें लौंघकर पिछले आचार्यों से शिक्षा ली जाती है। परन्तु पिछले आचार्यों के लिए जो श्रील प्रभुपाद ने कभी बतलाये ही नहीं।

पिछले आचार्यों द्वारा बताये गये पथभ्रष्ट गुरु कभी भी प्रमाणिक गुरु परम्परा के सदस्य नहीं हो सकते :

‘नारद मुनि, हरिदास ठाकुर और ऐसे आचार्यों को, जिन्हें भगवान के गुणों के प्रचार के लिए विशिष्ट रूप से अधिकार दिया गया है, कभी भी भौतिक स्तर तक निचे नहीं लाया जा सकता।

(श्रीमद्-भागवतम्, ७ . ७ . १४, भावार्थ)

अपने आचार्य को लौंघ पिछले आचार्यों से शिक्षा लेना ‘री-इनिशिएशन’ यानी पुनः दीक्षा के अध्याय से स्पष्ट हो जाता है। ‘पुनः दीक्षा’ शब्द का न तो श्रील प्रभुपाद ने और न पिछले किसी आचार्य ने कभी प्रयोग किया है।

प्रश्नोत्तर सेक्शन (जी.आई.आई., पृष्ठ ३५, प्रश्न ४) में ‘गुरु को तिरस्कृत कब किया जाये’ और ‘पुनः दीक्षा कब ली जाये’ के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। अपने विश्लेषण में लेखक कहते हैं :

‘भाग्यवश, इस विषय का मूल श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने जैव-धर्म में और श्रील जीव गोस्वामी ने अपने भक्ति संदर्भ में समझा दिया है।’

(जी.आई.आई., पृष्ठ ३५)

‘भाग्यवश’ शब्द,अभाग्य से यह बतलाता है कि श्रील प्रभुपाद यह जानकारी देना भूल गये थे। इसलिए अच्छा हुआ यह जानकारी हमें पिछले आचार्यों से मिल गयी।

परन्तु श्रील प्रभुपाद ने हर समय कहा था कि आध्यात्मिक प्रगति के लिए जो भी जानकारी चाहिए वह सब उनकी पुस्तकों में उपलब्ध है। हम क्यों ऐसे नियम ला रहे हैं जो हमारे आचार्य ने कभी नहीं बतलाए ?

२३.” परन्तु पिछले आचार्यों से पूछने में नुकसान क्या है ?”

कुछ नहीं। परन्तु इस प्रकार पाई गई जानकारी से हम श्रील प्रभुपाद द्वारा दिये गये नियम नहीं बदल सकते। श्रील प्रभुपाद ने कभी नहीं बतलाया कि एक प्रामाणिक गुरु कभी प्रथभ्रष्ट हो सकते हैं। ‘जिव का स्त्रोज’ का विवाद इसी कारण हुआ था।

‘हमे पिछले आचार्य प्रभुपाद के माध्यम से देखना चाहिए। हम प्रभुपाद को लाँघकर पिछले आचार्यों के पास नहीं जा सकते और न ही उनके पास जाकर पीछे मुड़कर श्रील प्रभुपाद को देख सकते हैं।

(अवर ओरिजिनल पोसिशन,पृष्ठ १६३,जी.बी.सी. प्रेस)

नये आध्यात्मिक नियम बनाना किस तरह से पिछले आचार्यों को प्रभुपाद के माध्यम से देखना होता है ?

अगर जी.बी.सी. ने पिछले आचार्यों के कथनों के अर्थ ठीक भी निकाले हुए हैं,तो भी उनके उपयोग से श्रील प्रभुपाद के उपदेशों को बदला नहीं जा सकता। श्रील नरहरि ठाकुर की पुस्तक श्रीकृष्ण भजनामृत में दो श्लोक इसी नियम को स्पष्ट करते हैं। जी.बी.सी. को इन श्लोकों का वर्णन करना चाहिए था;क्योंकि इसी पुस्तक से उन्होंने अपने दर्शन का प्रमाण लिया था।

श्लोक ४८ : ‘एक शिष्य दूसरे वरिष्ठ से कोई उपदेश ले सकता है,किन्तु इन उपदेशों को अपने गुरु के पास लाकर प्रस्तुत करना चाहिए। अपने गुरु को प्रस्तुत करने बाद उनसे फिर से यही उपदेश संलग्न निर्देशों के साथ सुनने चाहिए।’

श्लोक ४६ : ‘....एक शिष्य जिसने दूसरे वैष्णवों से कुछ उपदेश सुने हों वे उपदेश उचित भी हो सकते हैं,तो भी अगर वो इन उपदेशों को अपने गुरु से फिर से पृष्टि नहीं कराता और खुद अपना लेता है तो वह एक खराब शिष्य और पापी माना जायेगा।’

हम यह नम्र निवेदन करेंगे कि इस्कॉन के सदस्यों के आध्यात्मिक जीवन की प्रगती के लिये जी.आई.आई. पुस्तक में संशोधन किया जाए।

२४ . “श्रील प्रभुपाद ने ऐसा कभी क्यों नहीं बतलाया कि गुरु के पथभ्रष्ट होने पर क्या करना चाहिये ?”

श्रील प्रभुपाद के अंतिम आदेश के अनुसार वे ही भविष्य के लिए भी दीक्षा गुरु रहेंगे। और गुरु परम्परा के प्रामाणिक गुरु होने के

नाते कोई शंका नहीं कि वे एक क्षण के लिए भी पथभ्रष्ट हो सकते हैं —

‘एक प्रामाणिक गुरु हर समय परम पुरुषोत्तम भगवान की अहैतुकी भक्ति सेवा में लगे रहते हैं।

(चैतन्य चरितामृत, आदि, १. ४६)

श्रील प्रभुपाद ने बतलाया था कि एक गुरु तब ही गिर सकता है जब उसे दीक्षा देने की आज्ञा नहीं मिली हो :

‘अगर किसी गुरु जे आज्ञा न मिली हो और स्वतः ही गुरु बन गया हो तो वह धन और अनुयायियों के लाभ में आ सकता है।’

(भक्तिरसामृत-सिंधु, पृष्ठ ११६)

अगर कोई गुरु गिर जाता है तो असल में यह प्रमाण है कि अपने गुरु द्वारा उसे आज्ञा नहीं मिली थी। अगर एक भी इस्कॉन गुरु पथभ्रष्ट नहीं हुआ होता तो भी हम प्रश्न पूछ सकते थे कि दीक्षा देने की आज्ञा कहाँ से मिली।

जी.बी.सी. के साथ मुश्किल यह है कि इन स्पष्ट कथनों को वे स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि इसके कई खटटे परिणाम होंगे; क्योंकि सब इस्कॉन गुरु अपने आप को श्रील प्रभुपाद के द्वारा अधिकारिकत्व प्राप्त गुरु कहते हैं, उनमें से कुछ के पथभ्रष्ट हो जाने से यह प्रश्न उठने लगता है कि क्या श्रील प्रभुपाद का आदेश ठीक से समझा गया था ? अगर उन्हें सही में आज्ञा मिली थी तो वे कभी पथभ्रष्ट नहीं हो सकते थे। बल्कि वे महाभागवत होते।

‘गुरु हर समय मुक्त आत्मा होते हैं।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र तमाल कृष्ण गोस्वामी को, २१/६/७०)

२५. ”जैसे ही श्रील प्रभुपाद के शिष्य आध्यात्मिक सिद्धि पा लेंगे, ऋत्त्विक प्रणाली बेकार हो जायेगी। ”

कभी-कभी इस तरह की सोच को ‘स्फॉफ्ट ऋत्त्विक’ कहा जाता है। इसका मूल तर्क है कि ऋत्त्विक प्रणाली को लागू करने का एकमात्र कारण था कि श्रील प्रभुपाद को सशरीर प्रस्थान करने से पहले अपने शिष्यों में कोई भी शुद्ध भक्त नहीं मिला था।

यह मनगढ़त तर्क है क्योंकि श्रील प्रभुपाद ने ऐसा कभी नहीं कहा। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि कोई योग्य भक्त नहीं मिलने के कारण ऋत्त्विक प्रणाली लागू की गई थी। असल में ऋत्त्विक प्रणाली श्रीकृष्ण की निपुण योजना है। इस प्रकार का तर्क देकर भविष्य में कोई भी प्रभावशाली महत्त्वकांक्षी भक्त, भक्ति के लक्षणों का ढोंग कर, ऋत्त्विक प्रणाली को रोक सकता था।

अगर इस्कॉन में कोई शुद्ध भक्त हो भी तो उन्हें भी ऋत्त्विक प्रणाली का अनुगमन करना चाहिए। असली योग्य भक्त तो श्रील प्रभुपाद के आदेशों का पालन करके प्रसन्न होगा।

इस भ्रम का एक कारण है श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के गौडीय मठ को छोड़े हुए निर्देश। श्रील प्रभुपाद ने हमें बतलाया था कि उनके गुरु-महाराज का आदेश था कि एक जी.बी.सी. बनाओ और थोड़े समय उपरान्त उनमें से एक स्वतः तेजस्वी आचार्य प्रकट होगा। जैसा हमें मालूम है, गौडीय मठ ने कभी इस निर्देश का पालन नहीं किया और इसका परिणाम हम देख सकते हैं। कुछ भक्त

सोचते हैं कि हमें भी एक स्वतः तेजस्वी आचार्य की खोज करनी चाहिये। और जब तक यह आचार्य प्रकट नहीं होता तब तक ऋत्त्विक प्रणाली कार्य कर सकती है।

इसमें मुश्किल यह है कि श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती द्वारा छोड़े हुए निर्देश और श्रील प्रभुपाद द्वारा छोड़े गये निर्देशों में फर्क है। श्रील प्रभुपाद ने कहा था कि संस्था के संचालन के लिए एक जी.वी.सी. का गठन करना चाहिए, पर उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि एक स्वतः तेजस्वी आचार्य प्रकट होगा। उसकी जगह उन्होंने एक ऋत्त्विक प्रणाली कायम की है जो 'इस समय से' लागू है। श्रील प्रभुपाद के शिष्य होकर हम उनको लाँघकर श्रील भक्तिसिद्धांत के निर्देशों का पालन करना शुरू नहीं कर सकते।

अगर श्रील प्रभुपाद को कृष्ण ने यह निर्देश दिया होता कि इस संस्था का नया आचार्य आने वाला है, तो श्रील प्रभुपाद ने ऐसा कुछ अंतिम आदेश में लिखा होता। इसकी बजाय उन्होंने कहा कि उनकी किताबें ही विस्तृत होंगी और यह कि उनकी किताबें दस हजार वर्ष के लिए कानून की किताबें होंगी। भविष्य के आचार्य क्या करेंगे? श्रील प्रभुपाद ने एक ऐसा आंदोलन बनाया है जो समस्त पिछले आचार्यों की इच्छाओं की पूर्ति करता है।

इस्कॉन में नये स्वतः तेजस्वी आचार्य कैसे उभरेंगे अगर दीक्षा देना केवल श्रील प्रभुपाद का अधिकार है ?

कइयों ने तर्क किया है कि आचार्य का अधिकार होता है कि स्थिति अनुसार प्रणाली बदल दी जाये। अतः नये आचार्य इस्कॉन की ऋत्त्विक प्रणाली बदल सकते हैं। परन्तु क्या एक प्रमाणिक आचार्य संस्थापकाचार्य के

स्पष्ट निर्देशों के विरुद्ध जायेंगे। ऐसा करने से संस्थापकाचार्य के अधिपत्य पर गहरी चोट लगती है। इससे भ्रम और शंका का वातावरण छा जायेगा, क्योंकि शिष्यों को चुनना पड़ेगा कि किसके निर्देश का पालन करे।

अन्तिम आदेश को पढ़ने से सारी शंकाएँ मिट जाती हैं। कही भी 'सॉफ्ट ऋत्त्विक' नहीं बतलाया गया है। पज सिर्फ कहता है 'इस समय से'। अतः यह कहना कि यह प्रणाली नए आचार्य के उभरने से खत्म हो जायेगी अपनी मनोधरणा को एक स्पष्ट निर्देश के ऊपर थोपना है। यह पज सिर्फ यही कहता है कि :

‘जब तक संस्था रहेगी तब तक श्रील प्रभुपाद इस्कॉन के एकमात्र दीक्षा गुरु होंगे।’

यह धारणा श्रील प्रभुपाद की सोच से मेल खाती है जिसके अनुसार उन्होंने अपनी आंदोलन की सफलता के लिए खुद ही कदम उठा रखे थे। (कृपाया संबंधित आपत्ति ८ देखें : ‘क्या तुम कह रहे हो कि श्रील प्रभुपाद ने कोई शुद्ध भक्त नहीं बनाया?’)

कभी-कभी यह भी तर्क दिया जाता है कि ६ जुलाई का पज प्राथमिक रूप से ग्यारह ऋत्त्विक ही मनोनीत करता है। अतः उनके मरने या पथभ्रष्ट रूक जायेगी।

यह बहुत हल्का तर्क है। ६ जुलाई का पज यह नहीं कहता कि श्रील प्रभुपाद ही ऋत्त्विक को चुन सकते हैं या और ऋत्त्विक जोड़े नहीं जा सकते। श्रील प्रभुपाद ने इस्कॉन के प्रबंधन के लिए और भी कई प्रणालियाँ स्थापित की थी जिनके सदस्य बढ़ाये जा सकता है, उदाहरणतया जी.वी.सी.। यह न्याय विरुद्ध तर्क है कि प्रबंधन की प्रणाली को अलग करके दूसरी प्रणालियों से भिन्न बरताव किया जाये। खुद श्रील प्रभुपाद ने कभी यह नहीं बतलाया था कि ऋत्त्विक प्रणाली को चलाने का तरिका दूसरी प्रणालियों से भिन्न होगा।

तो भी यह तर्क प्रसिद्ध हो गया है, इसलिए हम इसके विरोध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करेंगे।

(क) टोपानागा केनयल में गवाही देते वक्त तमाल कृष्ण गोस्वामी ने श्रील प्रभुपाद से अपने पूछे प्रश्न के बारे में बतलाया था –

तमाल कृष्ण : ‘श्रील प्रभुपाद यह बस हुआ या आप किसी ओर को जोड़ना चाहते हैं?’

श्रील प्रभुपाद : “जैसी जरूरत हो, वैसे दूसरों को जोड़ सकते हो।”
(पिरामिड हाऊस गवाही, ३/१२/८०)

निश्चित रूप से अगर किन्हीं ऋत्त्विक का देहान्त हो गया हो या पथ-भ्रष्ट हो गये हो तो नये ऋत्त्विक को जोड़ने की जरूरत पड़ेगी।

(ख) ६ जुलाई के पत्र के अनुसार ऋत्त्विक की परिभाषा है : ‘आचार्य के प्रतिनिधि’। यह जी.वी.सी. का अधिकार है कि वे किसी को भी चाहे वह संन्यासी हो, टेंपल प्रेसिडेंट हो या जी.वी.सी. सदस्य ही हो, श्रील प्रभुपाद के

प्रतिनिधि के रूप में चुन सकते हैं या हटा सकते हैं। वर्तमान में वे दीक्षा गुरुओं को चुन रहे हैं जो साक्षात् भगवान के प्रतिनिधि होते हैं। अतः श्रील प्रभुपाद के कुछ प्रतिनिधियों को चुनना जिन्हें केवल नाम देना है, ज्यादा मुश्किल नहीं होना चाहिए।

(ग) ६ जुलाई का पत्र यह प्रदर्शित करता है कि श्रील प्रभुपाद की इच्छा थी कि ‘इस समय से’ ऋत्त्विक प्रणाली लागू हो जाये। उन्होंने जी.वी.सी. को प्रधान प्रबन्धन अधिकारी बनाया था जिससे जी.वी.सी. उनके द्वारा स्थापित समस्त प्रणालियों को व्यवस्थित कर सके। भविष्य में दीक्षा देने के लिए उन्होंने ऋत्त्विक प्रणाली की स्थापना की थी। यह कर्तव्य है कि इस प्रणाली को व्यवस्थित करे। इसके लिये अगर उन्हें किसी को निकालना या नियुक्त करना पड़े तो यह उनका कर्तव्य है। उसी प्रकार जिस प्रकार वे दूसरी प्रणालियों को व्यवस्थित करते हैं।

(घ) जुलाई ६, ११ एवं २१ के पत्र में ‘दस फार’ (अब तक), सो फार (अब तक), ‘इनिशियल लिस्ट’ (प्रथम सूची) इत्यादी का उपयोग यह दर्शाता है कि इस सूची में परिवर्तन किया जा सकता है। परिवर्तन करने के लिए कुछ प्रक्रिया जरूर बनाई गई होगी, जिसे अब तक लागू नहीं किया गया है।

(ङ) किसी भी निर्देश को समझने के लिए उसका उद्देश समझना अनिवार्य है। इस पत्र में निम्नलिखित कथन आते हैं – “कुछ वरिष्ठ भक्तों को ‘ऋत्त्विक आचार्य के प्रतिनिधि का कार्य दीक्षा देने के उद्देश से...’ एवं श्रील प्रभुपाद ने अब तक ग्यारह नाम दिये हैं।” एक आज्ञाकारी शिष्य का कर्तव्य है कि इस प्रणाली का उद्देश समझ कर कार्य करे। इस आदेश का निश्चित रूप से यह उद्देश नहीं था

कि केवल कुछ चुने हुए वरिष्ठ शिष्य ही आदिकाल तक दीक्षा देंगे। समय के अनुसार जब सब देह त्यागेंगे तो ऋत्त्विक प्रणाली खत्म हो जानी चाहिए क्योंकि पत्र का प्राथमिक उद्देश दीक्षा देना नहीं अपितु कुछ चुने हुए भक्तों को ऋत्त्विक नियुक्त करना था। एक परिपक्व नजर से देखने से साफ जाहिर हो जाता है कि इस पत्र का उद्देश है भविष्य में दीक्षा देने के लिए एक व्यवहारिक प्रणाली

लागू करना। अतः यह प्रणाली तब तक चलनी चाहिए जब तक दीक्षा देने की आवश्यकता हो। अतः आवश्यकतानुसार दूसरे वरिष्ठ भक्तों को 'आचार्य का प्रतिनिधि' नियुक्त करने से इस निर्देश के उद्देश की पूर्ति होगी।

(च) श्रील प्रभुपाद की वसीयात में साफ लिखा हुआ है कि भारत की स्थायी भूसंपत्तियों के निदेशक उनके दीक्षित शिष्य में से ही होंगे। इस तथ्य को ६ जुलाई के पत्र मिलाने से साफ जाहिर हो जाता है कि श्रील प्रभुपाद चाहते थे कि ऋत्त्विक प्रणाली चलती रहे। जी.बी.सी. का कार्य इस प्रणाली का निर्देशन करना था।

श्रील प्रभुपाद जब चाहें तब ६ जुलाई के निर्देश को भंग कर सकते हैं। परन्तु जैसा पूर्व में बतलाया गया था, भंग करने का निदेश श्रील प्रभुपाद के इस हस्ताक्षर युक्त पत्र के समान होना चाहिए। वैसे श्रीकृष्ण और उनके शुद्ध भक्त के लिये कुछ संभव होता है।

न्यूसडे पत्रकार : वर्तमान में आप नायक एवं गुरु हैं। आपकी जगह कौन लेगा ?

श्रील प्रभुपाद : वह कृष्ण आदेश देंगे, मेरी जगह कौन लेगा।

(श्रील प्रभुपाद साक्षात्कार, १४/७/७६.न्यूयॉर्क)

तो भी, हम अपने आचार्य के उन निर्देशों का पालन करना चाहेंगे जो हमें वास्तविकता में मिले थे, न कि भविष्य में आने वाले आदेशों की कल्पना करना या खुद अपने ही बना लेना।

२६. "ऋत्त्विक प्रणाली के समर्थक गुरु की शरण में नहीं जाना चाहते।"

कई भक्तों की यह धारणा है कि शरण में जाने के लिए गुरु को सशरीर उपस्थित होना होता है। उपर्युक्त आपत्ति ऐसी ही गलत धारणा पर आधारित है। अगर यह धारणा उचित होती तो वर्तमान में श्रील प्रभुपाद के मूल शिष्य उनकी शरण में नहीं जा रहे होते। गुरु की शरण में जाने का अर्थ होता है कि उनके आदेशों का पालन करना। यह प्रक्रिया उनके सशरीर उपस्थित होने पर निर्भर नहीं करती। इस्कॉन का उद्देश है भविष्य में आने वाले अनगिनत संभावित भक्तों को मार्गदर्शन और शिक्षा देना। यह प्रक्रिया अनगिनत शिक्षा संबंधों द्वारा जारी रह सकती है। वर्तमान जी.बी.सी. श्रील प्रभुपाद के आदेश का पालन करके दूसरों के लिये एक अच्छी मिसाल कायम कर सकती है। तब ठीक ऋत्त्विक समर्थक भी उनकी देखा-देखी नम्र हो जायेंगे और गुरु की शरण लेने और सेवा करने के लिए प्रोत्साहित होंगे।

अगर मान भी ले कि समस्त ऋत्त्विक समर्थक किसी गुरु की शरण में जाने के लिए आनाकानी कर रहे हैं तो भी ६ जुलाई का आदेश निरस्त नहीं हो जाता। जी.बी.सी. को तो चाहिये कि श्रील प्रभुपाद के इतने महत्वपूर्ण निर्देश का पालन करके अच्छी मिसाल स्थापित करना। और किसी कारण से नहीं तो इसलिए कि ऋत्त्विक समर्थकों को सबक मिलेगा।

२७. "अगर कोई दीक्षा गुरु नहीं होगा तो भक्तों का मार्गदर्शन कौन करेगा और उनको सेवा कौन देगा ?"

अब भी दीक्षा गुरु रहेंगे श्रील प्रभुपाद। मार्गदर्शन और सेवा अब भी उसी प्रकार मिलेगी जिस प्रकार श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति में मिलती थी यानी कि उनकी पुस्तकें पढ़कर एवं शिक्षा गुरु संबंधो द्वारा। १६७७ के पहले अगर कोई मंदिर में रहने आता था तो उसे भक्त लीडर, संकीर्तन लीडर, सन्यासी, रसोइये, पुजारी, टेंपल प्रेसिडेंट इत्यादि द्वारा मार्गदर्शन मिलता था। श्रील प्रभुपाद से निजी मार्गदर्शन मिलना तो बहुत दुर्लभ होता था। बल्कि वे इस तरह का मार्गदर्शन देने से अलग होना चाहते थे जिससे वे अपनी पुस्तकें लिख सकें। हम निवेदन करते हैं कि अब भी वैसा ही होना चाहिए जैसा श्रील प्रभुपाद के समय हो रहा था।

२८. "श्रील प्रभुपाद तीन बार निर्देश देते हैं कि एक शारीरिक गुरु की आवश्यकता अनिवार्य है। परन्तु आपका संपूर्ण तर्क इस तथ्य पर निर्भर है कि शारीरिक गुरु की आवश्यकता नहीं होती।"

‘इसलिए, जैसे ही हमारा कृष्ण के प्रति थोड़ा रुझान होने लगता है, वैसे ही कृष्ण हमारे हृदय से हमें अनुकूल उपदेश देने लगते हैं, जिससे हम धीरे-धीरे प्रगति कर सकें, धीरे-धीरे। कृष्ण प्रथम गुरु हैं, और जब हमें ज्यादा रुचि होने लगे तो हमें एक शारीरिक गुरु की शरण लेनी चाहिए।’

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, १४/८/६६, न्यूयॉर्क)

‘क्योंकि कृष्ण सबके हृदय में स्थित हैं। असल में, वो ही गुरु हैं, चैत्य-गुरु। तो हमारी सहायता के लिये, वे बाहर निकलकर एक शारीरिक रूप में आते हैं।’

(श्रील प्रभुपाद श्रीमद-भागवतम् प्रवचन, २८/५/७४, रोम)

‘अतः भगवान को चैत्य गुरु कहा जाता है, हृदय में विराजमान गुरु। और शारीरिक गुरु भगवान की कृपा है.... भगवान तुम्हारी आन्तरिक एवं बाह्य सहायता करेंगे, गुरु के शारीरिक रूप में बाहर से, और हृदय में बैठे गुरु द्वारा आन्तरिक रूप से।’

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, २३/५/७४)

श्रील प्रभुपाद ने शारीरिक गुरु का उपयोग यह समझाने के लिये किया कि बद्ध स्थिति में हम केवल चैत्य गुरु या परमात्मा के मार्गदर्शन पर नहीं निर्भर रह सकते। यह आवश्यक है कि परमात्मा के बाह्य रूप की हम शरण लें। उन्हें दीक्षा गुरु कहते हैं। इस तरह के गुरु आध्यात्मिक जगत के निवासी और श्रीकृष्ण के अन्तरंग सहयोगी होते हैं। वे बद्ध दलित आत्माओं के उत्थान के लिए कभी-कभी सशरीर प्रकट होते हैं। वे कई बार आध्यात्मिक पुस्तकें लिखते हैं जो शारीरिक आँखों द्वारा पढ़ी जा सकती हैं। वे प्रवचन देते हैं जो शारीरिक कानों द्वारा सुने जा सकते हैं और भौतिक टेप में रिकॉर्ड किये जा सकते हैं। वे अपनी शारीरिक मूर्ति छोड़ते हैं और हो

सकता है कि वे एक शारीरिक जी.बी.सी. को भी छोड़ें जो उनकी सशरीर अनुपस्थिति में संस्था का प्रबंधन देखें। परन्तु श्रील प्रभुपाद ने कभी भी ऐसा नहीं बतलाया कि गुरु का कार्य करने के लिए शारीरिक गुरु को सशरीर उपस्थित भी रहना आवश्यक है।

जैसा हमने पहले इंगित किया था, अगर ऐसा होता तो वर्तमान में कोई भी उनका शिष्य नहीं कहलाता। अगर दिव्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए सशरीर गुरु की वर्तमान में उपस्थिति अनिवार्य होती तो श्रील प्रभुपाद के समस्त शिष्यों को किसी गुरु द्वारा पुनः दीक्षा लेनी चाहिए।

इसके अलावा कई हजार शिष्य ऐसे भी थे जो श्रील प्रभुपाद के शरीर के निकट आये बगैर भी दीक्षित हुए थे। तो भी सब यह स्वीकारते हैं कि इन शिष्यों ने गुरु का संग लिया, प्रश्न पूछे, शरण ली, सेवा की और दीक्षा ली। उपर्युक्त तीनों कथनों का प्रमाण देकर कोई इन शिष्यों की दीक्षा को नहीं नकारता।

२६.” क्या दीक्षा गुरु बद्ध आत्मा हो सकते हैं ?”

जैसा हम पहले बतला चुके हैं, श्रील प्रभुपाद के समस्त उपदेशों में सिर्फ एक जगह पर दीक्षा गुरु की योग्यता बतलायी गयी है। (चैतन्य चरितामृत मध्य, २४. ३३०) चैतन्य चरितामृत का यह भाग केवल दीक्षा संबंधित ही है। यह कथन स्पष्ट रूप से स्थापित करता है कि दीक्षा गुरु महाभागवत ही होना चाहिए। यहाँ महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि श्रील प्रभुपाद ‘मस्ट’ (जरूरी), ‘मस्ट’ (जरूरी) एवं ‘ओनली’ (केवल) शब्द का उपयोग करते हैं।

इससे ज्यादा और जोर नहीं दिया जा सकता। ऐसा कही कथन नहीं है कि दीक्षा गुरु एक बद्ध आत्मा हो सकते हैं। यह आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि श्रील प्रभुपाद को गुरु तत्त्व की सटीक जानकारी है। कुछ ऐसे कथन जरूर आते हैं जो कभी-कभी यह आभास कराते हैं कि गुरु एक बद्ध आत्मा हो सकता है। ये दो श्रेणियापं में आते हैं :

(क) शिक्षा गुरु की योग्यता का वर्णन करने वाले :

ये कथन ज्यादातर यह बतलाते हैं कि गुरु बनना बहुत सरल है; कि कैसे बच्चे भी बन सकते हैं। ये ज्यादातर श्री चैतन्य के ‘अमार आज्ञाय’ श्लोक से संबंधित होते हैं।

(ख) गुरु बनने की विधि करने वाले :

इन कथनों में ज्यादातर ‘बनना’ शब्द आता है। ये बताते हैं कि नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करने से आध्यात्मिक प्रगति होती है व गुरु बनने के लिए योग्यता मिल सकती है। परन्तु यह कथन कभी नहीं कहते कि अंत में गुरु की योग्यता महाभागवत से कम भी हो सकती है। यह केवल विधि का वर्णन करते हैं।

हमने यह उत्तर संक्षिप्त रखा है क्योंकि इसके ऊपर एक दूसरा ही लेख लिखा जा सकता है। यहाँ यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि गुरु की योग्यता क्या होनी चाहिए। महत्त्वपूर्ण यह समझना है कि श्रील प्रभुपाद ने क्या आदेश दिये थे। ऋत्त्विक प्रणाली केवल इसलिए लागू नहीं करनी चाहिए क्योंकि दीक्षा गुरु महाभागवत होना चाहिए। परन्तु इसलिए कि श्रील प्रभुपाद ने यह आदेश दिया है। हमें केवल यह देखना है कि श्रील प्रभुपाद ने क्या आदेश दिया व उस आदेश का पालन करना चाहिए। यह लेख श्रील प्रभुपाद के अंतिम आदेशों को प्रमाण मान रहा है। वैसे इस विषय को हमने पृष्ठ १६ एवं ५८ में भी छुआ है।

३०.” श्रील प्रभुपाद ने जी.बी.सी. को संस्था का निर्देशक बनाया है और जी.बी.सी. ने संस्था में इसी तरह से दीक्षा देने का फैसला किया है।”

‘श्रील प्रभुपाद ने प्रबंधन प्रणालियों को बदलने का अधिकार जी.बी.सी. को कभी नहीं दिया था :

‘प्रस्तावित – श्री श्रीमद ए.सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य एवं प्रमुख है। उन्होंने संघ के प्रबंधन के लिए अपने प्रतिनिधि के रूप में जी.बी.सी. की स्थापना की है। उनके दिव्य उपदेशों को जी.बी.सी. अपना प्राण धन मानती है और स्वीकारती है कि उनकी कृपा पर ही वे संपूर्णतया निर्भर है। जी.बी.सी. का एकमात्र उद्देश है –श्री श्रीमद द्वारा प्रेमपूर्वक दिये हुए निर्देशों का पालन करना, उनके उपदेशों की रक्षा करना और उनको शुद्ध रूप में संपूर्ण दुनिया में फैलाना। निर्देशों का पालन करना, उनके उपदेशों की रक्षा करना और उनको शुद्ध रूप में संपूर्ण दुनिया में फैलाना।

(जी.बी.सी. की परिभाषा, प्रस्तावित, जी.बी.सी. मिनट्स, १६/७५)

‘प्रबंधन की प्रणाली इसी तरह चलेगी और इसमें परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।’

(श्रील प्रभुपाद की वसीयत, ४/६/७७)

इस्कॉन में दीक्षा का प्रबंध करने के लिए उन्होंने ऋत्विक् प्रणाली चुनी थी। जी.बी.सी. का एकमात्र कार्य है इस प्रणाली को ठीक से चलाना न कि उसे बंद कर देना और उसकी जगह दूसरी प्रणाली एवं नियम लागू करना-

‘अब तक जो मैंने तुम्हें दिये हैं, उनको नियमितता से पालन करने की कोशिश करते रहो। कोई नया आविष्कार मत करना अथवा सब बर्बाद हो जायेगा।

(श्रील प्रभुपाद का पत्र पुष्ट कृष्ण एवं बली मर्दन को, १८/६/७२)

‘अब मैंने हमारी कृष्ण भावनामृत संस्था के नियमों के निरीक्षण और पालन के लिये जी.बी.सी. को अधिकार दिया है। अतः जी.बी.सी. को बहुत सतर्क रहना होगा। समस्त निर्देश मैंने पहले ही अपनी पुस्तकों में दे लिये हैं।’

(श्रील प्रभुपाद को पत्र सत्स्वरूप को, १३/६/७०)

‘मूल रूप से मैंने १२ जी.बी.सी. सदस्य नियुक्त किये हैं और उनको १२ क्षेत्र दिये हैं जिनका वे प्रबंधन कर सकें। परन्तु सामूहिक सहमति द्वारा तुमने सब कुछ बदल दिया, तो यह क्या है, मुझे नहीं मालूम।’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र रूपानगा को, ११/४/७२)

‘जब मैं यहाँ नहीं रहूँगा तब क्या होगा ? क्या सब कुछ जी.बी.सी. द्वारा नष्ट कर दिया जायेगा ?’

(श्रील प्रभुपाद का पत्र हंसदूत को, ११/४/७२)

श्रील प्रभुपाद द्वारा दिये गये निर्देशों के अधीन ही जी.बी.सी. को कार्य करना चाहिए। हमें यह देख कर दुःख होता है कि श्रील प्रभुपाद ले प्रतिनिधि संस्था अपना कार्य नहीं कर पा रही; क्योंकि श्रील प्रभुपाद को आशा थी कि समस्त भक्तगण जी.बी.सी. के निर्देशन में ही सहयोग से कार्य करेंगे।

हम सबको श्रील प्रभुपाद के अंतिम आदेश के संरक्षण में सहयोग से कार्य करना चाहिए।

निष्कर्ष

हमें आशा है कि इस लेख को पढ़कर पाठकों को इस्कॉन में दीक्षा संबंधी श्रील प्रभुपाद का अन्तिम आदेश और गहराई से समझ आया होगा। इस प्रक्रिया में अगर हमने किसी को रोष पहुँचाया हो तो हमें क्षमा कर दीजिएगा। यह हमारा आशय नहीं था।

इस लेख के शुरू में हमने जोर देकर कहा था कि अगर दीक्षा संबंधी आदेशों का उचित ढंग से पालन नहीं हो रहा है तो इसका कारण किसी की जानबूझकर गलती नहीं है। अतः किसी को दोष देने में व्यर्थ ही समय नहीं गँवाना चाहिए। कोई भी आचार्य जब प्रस्थान करते हैं तो उस समय कुछ भ्रम फैलता ही है। उन्नीस साल का भ्रम इस आंदोलन के ६,५०० वर्ष के इतिहास का एक बहुत छोटा अंश है। अब समय आ चुका है कि अपनी गलती समझकर, उनसे सीखकर और इस समय को अपने पीछे छोड़कर इस्कॉन का फिर से सुदृढ़ एवं मजबूत बनाया जाये।

हो सकता है कि ऋत्विक् प्रणाली को धीरे-धीरे लागू करना आवश्यक पड़े। ऐसा भी हो सकता है कि शुरू के कुछ समय के लिये इस प्रणाली को म.आ.स.सि. प्रणाली के समानांतर चलाया जाये जिससे ज्यादा तनाव एवं अशांति न फैले। इन सब विषयों को बहुत गंभीरता और सहजता से सोचना पड़ेगा। जब तक सबका लक्ष्य श्रील प्रभुपाद के अंतिम आदेश को लागू करना है, तब तक दूसरों की भावना को ठोस पहुँचाने की आवश्यकता नहीं है। समस्त भक्तों को प्यार और समझदारी से नई प्रणाली से सरोकार होने का समय देना चाहिए। गुरु और दीक्षा संबंधित श्रील प्रभुपाद के उपदेशों को अगर कमबद्ध तरीके से समस्त भक्तगण को सिखाया जाये तो बहुत जल्द और बिना ज्यादा समस्या के ठिक किया जा सकता है।

इस विषय ने कई लोगों को शजु बना दिया है। ऋत्विक् प्रणाली की सत्यता एवं व्यावहारिकता पर जब सहमति हो जाए तब दोनों पक्षों को ठंडा होने के लिए थोड़ा वक्त जरूर लगेगा। थोड़ा समय अवकाश लेकर दोनों पक्षों को घुल-मिलकर एक दूसरे को फिर से जानने, समझने और मित्रता संबंध स्थापित करने पड़ेंगे। अभाग्य से इस समय भी बहुत उत्तेजना है, ज्यादा ऋत्विक् समर्थकों की तरफ से। हम अपने लिए तो कह सकते हैं कि श्रील प्रभुपाद के सशरीर प्रस्थान उपरान्त अगर हम खुद वरिष्ठ भक्त होते तो सम्भवतया हम भी वही गलती करते जो अभी तक हुई है। हो सकता है ज्यादा गलतियाँ करते।

यह हमारा अनुभव है कि इस्कॉन के वरिष्ठ भक्तों ने ऋत्विक् विषय का उचित परीक्षण नहीं किया है। अभाग्य से ज्यादातर ऋत्विक् लेख निजी आक्रमण और उत्तेजक कथनों से भरे होते हैं, जिससे हर कोई प्रणाली को गलत मानने लगता है। सबसे उत्तम व्यवस्था यही होगी कि स्वयं जी.वी.सी. इस विषय को सुलझा ले।

हम मानते हैं कि हम भी मनुष्य के चार विकारों से भरे हैं। अतः हम तरह की टिप्पणी व आलोचना स्वीकारने को तैयार हैं। हमारी दिली मनोकामना है कि इस लेख से श्री श्रीमद् प्रभुपाद के इस्कॉन में उनके प्रस्थान उपरान्त फैले भ्रम और विवादास्पद स्थिति को खत्म करने में सहायता मिले। अतः हमारे अपराधों को क्षमा कीजिएगा।

श्रील प्रभुपाद की जय हो।
खेवल श्रील प्रभुपाद ही हमके एक कर सकते हैं।

ऋत्त्विक क्या है ?

सामान्यतः ऋत्त्विक को निम्नलिखित दो में से एक गलत तरीके से समझा जाता है :

(क) एक तुच्छ पुजारी,केवल संस्कार करने वाला, जो एक तंज की तरह आध्यात्मिक नाम देता रहता है।

(ख) दीक्षा गुरु के उत्तराधिकारी जो पूर्ण योग्यता प्राप्त करने पर ऋत्त्विक की तरह कार्य करना छोड़कर खुद दीक्षा देने लगेंगे।

उपरोक्त परिभाषाओं को श्रील प्रभुपाद द्वारा दी हुई परिभाषा से मिलाने से :

परिभाषा (क)- ऋत्त्विक एक बेहद उत्तरदायित्व का कार्य है। यह इससे स्पष्ट होता है कि श्रील प्रभुपाद ने केवल ऐसे ११ भक्तों को ही चुना जो पहले से उनके आंदोलन में कई महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व ले चुके थे। इस प्रकार, ज्यादातर तो इनका कार्य रोजमर्रा का रहेगा, तो भी ये ही सबसे पहले दीक्षा प्रप्ति करने के कठिन स्तर तक नहीं पहुँचने वालों को अलग कर सकेंगे। इनका कार्य कुछ-कुछ एक सिपाही जैसा होगा जो गलतियाँ पकड़ सके। श्रील प्रभुपाद ने कई बार यह इच्छा दर्शाई थी कि दीक्षा तभी मिलनी चाहिए जब एक भक्त, कम से कम छः माह तक तो, १६ माला जाप कर रहा हो, उनकी पुस्तकें पढ़ रहा हो, इत्यादी।

अगर कोई भक्त इन नियमों से किसी का पालन नहीं कर पा रहे हो तो टेंपल प्रेसिडेंट द्वारा ऋत्त्विक को कहने पर भक्त को दीक्षा देने की मनाही हो सकती है। इस तरह से ऋत्त्विक का कार्य है कि श्रील प्रभुपाद के इस धरती से प्रस्थान करने के उपरान्त इस्कॉन का आध्यात्मिक स्तर वैसा ही रहे।

वैसे खुद ऋत्त्विक को भी इन नियमों का दृढतापूर्वक पालन करना होगा और उस तरह वह एक योग्य शिक्षा गुरु भी होगा। परन्तु यह जरूरी नहीं कि ऋत्त्विक का दीक्षित भक्त के साथ शिक्षा का संबंध होगा ही। ऋत्त्विक उस भक्त का शिक्षा गुरु हो सकता है या नहीं भी। अगर कोई ऋत्त्विक शिक्षा गुरु भी बनता है तो यह कार्य उसके ऋत्त्विक कार्य से बिल्कुल अलग होगा। श्रील प्रभुपाद की सशरीर मौजूदगी में भी नये दीक्षित शिष्य अपने ऋत्त्विक से कई बार नहीं मिलते थे। ऋत्त्विक उनका नया आध्यात्मिक नाम पत्र द्वारा भेज देते थे और टेंपल प्रेसिडेंट दीक्षा यज्ञ करते थे। मगर इसमें कोई हर्ज नहीं कि ऋत्त्विक कूद भी दीक्षा यज्ञ सम्पादित करे, अगर टेंपल प्रेसिडेंट सहमत हो तो।

परिभाषा (ख)- जैसा हम पहले कई बार कह चुके हैं, दीक्षा गुरु बनकर शिष्य अपनाने के लिए उस भक्त को एक आदेश प्राप्त महाभागवत होना जरूरी है। श्रील प्रभुपाद अपना शरीर छोड़ने से पहले इस्कॉन में ऐसी प्रणाली लागू करके गए जिससे किसी और के द्वारा दीक्षा देने अवैध हो जाता है। इस प्रकार श्रील प्रभुपाद के आलावा आगे चलकर किसी के पास दीक्षा देने का अधिकार नहीं है। अतः अगर कोई ऋत्त्विक या कोई और महाभागवत बन भी जाता है तो भी वह दीक्षा गुरु बन सकता। अगर उसे इस्कॉन में रहना है तो उसे इसी

ऋत्त्विक प्रणाली का पालन करना होगा। हमें ६ जुलाई १९७७ को आदेश दिया गया था जिसमें उन ऋत्त्विक के आगे चलकर दीक्षा गुरु बनने की बात नहीं लिखी गई थी।

वे क्या करते हैं एवं उनका चयन किस प्रकार होता है :

- क. ऋत्त्विक, श्रील प्रभुपाद की ओर से, शिष्य अपनाते हैं, उन्हें नया आध्यात्मिक नाम देते हैं, उनकी माला पर जप करते हैं एवं दूसरी दीक्षा में गायत्री मंत्र देते हैं। यह कार्य उन्हें ६ जुलाई के पत्र के द्वारा श्रील प्रभुपाद ने सौंपा था। (कृपया परिशिष्ट देखें।)
- यह ऋत्त्विक टेंपल प्रेसिडेंट द्वारा अनुमोदन के लिए भेजी गई सभी सिफारिशों का परिक्षण करते थे कि क्या यह शिष्य उपयुक्त नियमों का पालन कर रहा है।
- ख. ऋत्त्विक एक पुजारी भी है अतः वह एक योग्य ब्राह्मण होना चाहिए। ऋत्त्विक का चयन करते वक्त श्रील प्रभुपाद ने पहले 'वरिष्ठ संन्यासीयों' को नियुक्त करने को कहा था परन्तु उन्होंने अन्त में कुछ ऐसे भक्त भी नियुक्त किए जो संन्यासी नहीं थे। (कृपया परिशिष्ट में ७ जुलाई का वार्तालाप देखें।) वस्तुतः सारे ऋत्त्विक चाहे संन्यासी थे या नहीं, वे श्रील प्रभुपाद के आन्दोलन का प्रबन्धन करने वाले वरिष्ठ भक्त थे जो ऋत्त्विक के कार्य के लिए योग्य थे।
- ग. भविष्य में जी.बी.सी. दूसरे ऋत्त्विकों का चयन कर सकती है। वस्तुतः उनका चयन करने और हटाये जाने की कार्यशाली उसी तरह होगी जिस तरह वर्तमान की दीक्षा गुरु प्रणाली की है। श्रील प्रभुपाद ने जी.बी.सी. को इस तरह के अधिकार दे रखे हैं। वे वर्तमान में भी ऋत्त्विक से भी ज्यादा वरिष्ठ भक्त थे प्रबन्धकों यानी ऋत्त्विक संन्यासी, ट्रस्टी एवं दूसरे जी.बी.सी. इत्यादी का चयन एवं निवृत्ति कर सकते हैं।

अतः, सारांश में यह प्रणाली उसी तरह कार्य करेगी जिस तरह श्रील प्रभुपाद के इस धरती पर सशरीर उपस्थित होने पर चलती थी। सब भक्तों का आपसी संबंध, आचरण इत्यादी उसी तरह होगा जिस प्रकार १६७७ में श्रील प्रभुपाद की सशरीर उपस्थिति के अंतिम चार माह में थे और जिस प्रकार श्रील प्रभुपाद अपनी वसीयत में जोर देकर कहते हैं —

“प्रबन्धन प्रणाली उसी तरह कार्य करनी चाहिए जिस प्रकार अब चल रही है और किसी प्रकार का बदलाव लाने की जरूरत नहीं है।”

दीक्षा

दी



दिव्य ज्ञान

दिव्य ज्ञान मतलब परम पुरुषोत्तम
भगवान के मूल रूप का
ज्ञान जो (गुरु द्वारा दिये गये)
दिव्य मंत्र में विद्यमान होता है
और (एक व्यक्ति का) भगवान से
संबंध का ज्ञान होता है।
(भक्ति संदर्भ २४३)

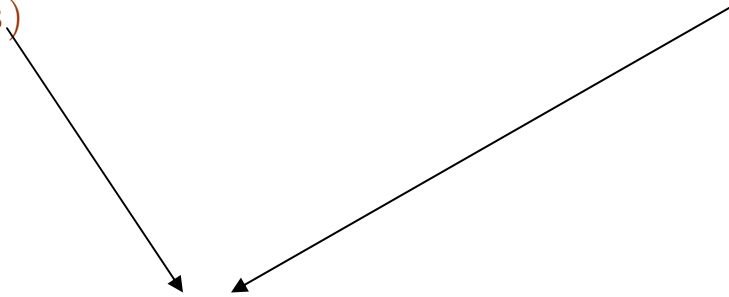
क्षा



क्षप्यती

क्षप्यती मतलब नाश करना
(श्रीमद्-भागवतम्, ४.२६.६१)
यही अर्थ इस श्लोक के शब्द से शब्द
अनुवाद में दिया गया है।
यह पाप कर्मों के नाश करने से संबंधित है
जो दीक्षा की परिभाषा में दर्शाया गया है।

दृढता



पारिशिष्ट

इस्कॉन

अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ

संस्थापक आचार्य : श्री श्रीमद ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

६ जुलाई, १९७७

समस्त जी.बी.सी. एवं टेम्पल प्रेसिडेन्ट्स के लिए

प्रिय महाराज एवं प्रभुगण,

आपके चरणों में मेरा दण्डवत प्रमाण स्वीकारे। हाल ही में जी.बी.सी. श्री श्रीमद के साथ वृंदावन में थे, तब श्रील प्रभुपाद ने सुचित किया था कि जल्द ही वे पहली दीक्षा (हरि नाम) और दूसरी दीक्षा (गायत्री) देने के लिए अपने वरिष्ठ शिष्यों में से कुछ को 'ऋत्विक्' आचार्य के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने के लिए मनोनीत करेंगे अब तक श्रील प्रभुपाद ने ग्यारह शिष्यों की सूची दी है जो उपर्युक्त स्थिति में कार्य करेंगे :

श्रीपद कीर्तनानंद स्वामी
श्रीपद सतस्वरूप दास गोस्वामी
श्रीपद जयपताका स्वामी
श्रीपद तमाल कृष्ण गोस्वामी
श्रीपद हृदयानन्द गोस्वामी
श्रीपद भावानंद गोस्वामी
श्रीपद हंसदूता स्वामी
श्रीपद रामेश्वर स्वामी
श्रीपद हरिकेश स्वामी
श्रीमद भगवान दास अधिकारी
श्रीमद जयतीर्थ दास अधिकारी

पूर्व में किसी भक्त की सिफारिश करने के लिए टेम्पल प्रेसिडेंट श्रील प्रभुपाद को पत्र लिखते थे। अब चूंकि श्रील प्रभुपाद ने इन प्रतिनिधियों को मनोनीत कर दिया है, अतः इस समय से टेम्पल प्रेसिडेंट पहली और दूसरी दीक्षा के लिए अपने सिफारिशी पत्र इन प्रतिनिधियों में से निकटतम प्रतिनिधि को भेजे। सिफारिश को परखने के पश्चात ये प्रतिनिधि उस भक्त को श्रील प्रभुपाद के शिष्य के रूप में स्वीकार कर उसे आध्यात्मिक नाम दे सकते हैं या दूसरी दीक्षा के लिए यज्ञोपवीत पर गायत्री जाप कर सकते हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह श्रील प्रभुपाद किया करते थे। नए दीक्षित भक्त श्री श्रीमद ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के शिष्य हैं और ये ग्यारह भक्त उनके प्रतिनिधि हैं। इन प्रतिनिधियों के पत्र द्वारा भेजे गए आध्यात्मिक नाम और यज्ञोपवीत मिलने के उपरान्त टेम्पल प्रेसिडेंट अपने मंदिर में उसी प्रकार यज्ञ कर सकते हैं जिस प्रकार हुआ करते थे। जो प्रतिनिधि नए दीक्षित शिष्यों को श्रील प्रभुपाद की ओर से स्वीकार करेंगे, उन्हें इन नए दीक्षित शिष्यों के नाम श्रील प्रभुपाद की 'इनशिप्टेड डिसाइपल्स' (दीक्षित शिष्य) नामक पुस्तिका में सम्मिलित करने के लिए भेज देना चाहिए।

आपकी सकुशलता की कामना करते हुए,

आपका सेवक

(मूल दस्तावेज पर हस्ताक्षर अंकित)

श्रील प्रभुपाद द्वारा अनुमोदित

(मूल दस्तावेज पर श्रील प्रभुपाद के हस्ताक्षर अंकित हैं।)

तमाल कृष्ण गोस्वामी

सचिव — श्रील प्रभुपाद

इस्कॉन

अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ

संस्थापक आचार्य : श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

६ जुलाई, १९७७

समस्त जी.बी.सी. एवं टेम्पल प्रेसिडेन्ट्स के लिए

प्रिय कीर्तनानंद महाराज,

आपके चरणों में मेरा दण्डवत प्रमाण स्वीकारे। श्री श्रीमद् श्रील प्रभुपाद को कुछ समय पूर्व 'ब्रजवासी स्पिरिट', भाग-४, अंक-४ की प्रति प्राप्त हुई, जिससे वे बहुत प्रफुल्लित हुए। मुखपृष्ठ, जिसमें कालाद्री को अग्नी यज्ञ करते हुए दिखाया गया है, को देखते हुए उन्होंने कहा कि 'जरा देखो तो, ये कितना अच्छा भक्त है, सब कुछ करने में इतना निपुण है।' फिर जब श्रील प्रभुपाद ने प्रथम पृष्ठ देखा तो उनकी आँखें राधा-वृन्दावनचन्द्र पर गड़ी रह गई और वे बोले, 'वृन्दावन विहारी कितने सुन्दर है। जहाँ वृन्दावनचन्द्र है वहाँ कोई विपत्ति नहीं आ सकती।' पूरी पत्रिका का पूर्ण आनन्द लेने के बाद उन्होंने कहा, 'यह उनके अपने प्रेस में छापा है। यह बहुत अच्छी प्रगती है।' श्री श्रीमद् प्रभुपाद ने 'हाउ आई वास डीप्रोग्राम्ड' लेख की बहुत सराहना की। जब प्रभुपाद ने उस जवान लडके की कहानी सुनी तो उनका हृदय भावना से भर उठा और वे बोले, 'यदि एक व्यक्ति भी इस लडके की तरह बदल जाए तब यह आन्दोलन सफल है। आगे बहुत आशा है। तुम सब मिलकर एकजुट हो जाओ और इस आन्दोलन को आगे बढ़ाओ। अब मुझे विश्वास है कि यह आन्दोलन चलता रहेगा। पत्रिका को देखते हुए प्रभुपाद ने 'ईष्टगोष्ठी' पृष्ठ पर तुम्हारी अच्छी तस्वीर भी देखी और उस पर उन्होंने एक लम्बी प्यार भरी नजर डाली। तुमने किस प्रकार इस कृष्ण भावनामृत को समझा है इस बात पर उन्होंने अपनी गहरी प्रशंसा व्यक्त की।

सभी जी.बी.सी. और टेम्पल प्रेसिडेन्ट्स को एक पत्र भेजा गया है जो शीघ्र ही तुम्हें भी मिल जाएगा। यह पत्र भविष्य में लागू होने वाली दीक्षा की प्रक्रिया का वर्णन करता है। श्रील प्रभुपाद ने अब तक ग्यारह प्रतिनिधियों को चुना है जो उनकी ओर से नए भक्तों को दीक्षा देंगे। तुम इस पत्र के आगमन की प्रतीक्षा कर सकते हो (मूल प्रति रामेश्वर महाराज को भेजी गई है, ताकि वे उसकी अनेक प्रतियाँ बना सकें।) और फिर उन सभी भक्तों को दीक्षा दी जा सकती है, जिनकी सिफारिश तुमने अपने पहले पत्र में की थी।

श्री श्रीमद् कीर्तनानंद की बतियात में स्थिरता बनी हुई है और पुस्तक वितरण के दुगुने होने के साथ तालमेल रखते हुए उन्होंने आश्चर्य जनक रूप में से अपने अनुवाद कार्य को भी दुगुना कर दिया है।

आपकी सकुशलता की कामना करते हुए,

आपका सेवक

(मूल प्रति पर हस्ताक्षर अंकित है)

तमाल कृष्ण गोस्वामी
सचिव — श्रील प्रभुपाद

श्रीपद् कीर्तनानंद स्वामी
द्वारा इस्कॉन, न्यू वृन्दावन

बी.बी.टी.

भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट

संस्थापक आचार्य : श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

२१ जुलाई, १९७७

गुरु और गोरंगा की जय ।

प्रिय जी.बी.सी. गुरुभाइयो,

आपकी चरणधूलि में मेरा दण्डवत प्रमाण स्वीकारे । श्रील प्रभुपाद की जय हो । मुझे कुछ समय पहले ही तमाल कृष्ण गोस्वामी द्वारा भेजे हुए कुछ पत्र प्राप्त हुए हैं, जिनमें से दो दस्तावेजों को सम्मिलित कर रहा हूँ —

१. श्रील प्रभुपाद द्वारा अपनी वसीयात की अंतिम रूप की प्रति ।

२. श्रील प्रभुपाद द्वारा उनकी ओर से दीक्षा देने वाले मनोनीत शिष्यों की आरम्भिक सूची सारे केन्द्रों में भी भेजी जा रही है ।

तमाल के पत्र से यह लगता है कि अपनी लम्बी बीमारी के बावजूद श्रील प्रभुपाद काफी उत्साहित हैं और पूरे जोर से अनुवाद कर रहे हैं । जब विभिन्न जी.बी.सी. अपने प्रचार कार्य के फल, या कोई खुशखबरी आदि उन्हें सुनाते हैं तो वे विशेष रूप से उत्साहित हो उठते हैं । तमाल कृष्ण महाराज ने बल देते हुए कहा कि हम सबको इस प्रकार के समाचार भेजते रहने चाहिए; क्योंकि श्रील प्रभुपाद प्रायः यह पूछते हैं, 'क्या समाचार है ?' प्रभुपाद के भाव का एक ज्वलंत उदाहरण, हंसदूत स्वामी के प्रोत्साहन भरे 'सीलोन' (श्रीलंका) में प्रचार के समाचार सुनने पर उनकी प्रतिक्रिया को देखकर मिलता है । प्रभुपाद बोले, 'मैं सीलोन जाना चाहता हूँ । मैं जा सकता हूँ । मैं कुर्सी पर कही भी जा सकता हूँ । यह सृजन केवल मेरी त्वचा को छू रही है, आत्मा को नहीं ।'

अन्य चीजों के आलावा तमाल ने इस जरूरत पर बल दिया है कि प्रतिमाह एक जी.बी.सी. को श्रील प्रभुपाद की व्यक्तिगत सेवा के लिए जाना चाहिए । श्रील प्रभुपाद ने जैसा हाल ही में कहा है, अब इस प्रकार का दर्शन बहुत महत्त्वपूर्ण है । सभी जी.बी.सी. सदस्य इसके लिए उत्सुक होने चाहिए; क्योंकि इससे प्रभुपाद को प्रबंधन से छुटकारा मिलेगा और सभी को व्यक्तिगत रूप से उनकी देख-देख करने का सुनहरा अवसर मिलेगा जैसे उन्हें मालिश देना एवं अन्य अमृतमय सेवाएँ । इस सेवा में श्रील प्रभुपाद का व्यक्तिगत संग पहले से भी अधिक मिल सकता है । २३ जी.बी.सी. सदस्यों को मिलाकर एक माह भी ऐसा नहीं होना चाहिए जो भरा ना हो ।

एक अंतिम समाचार यह है कि श्रील प्रभुपाद ने उत्तरी भारत (दिल्ली सहित लेकिन वृंदावन को छोड़कर) के नए जी.बी.सी. श्रीपद भक्ति चैतन्य स्वामी को मनोनीत किया है । तमाल कृष्ण महाराज ने कहा कि उनके पंजाब में प्रशंसनीय प्रचार कार्य को प्रोत्साहन देने के लिए ऐसा किया है ।

जय, आशा करता हूँ कि आप सकुशल होंगे और प्रचार में पूरी तरह से डूबे हुए होंगे, जिससे श्रील प्रभुपाद को पूर्णतया तृप्ति मिलती रहे ।

अन्य दस्तावेज सम्मिलित

आपका पतित सेवक

(मूल प्रति पर हस्ताक्षर अंकित हैं)

रामेश्वर दास स्वामी

वार्तालाप, १६ जुलाई, १९७७, वृन्दावन

तमाल कृष्ण गोस्वामी : उपेन्द्र और मैं देख रहे थे कि यह काफी दूर.....

श्रील प्रभुपाद : और तुम्हें वहाँ कोई बाधा नहीं पहुँचाएगा। अपना खुद का प्रचार क्षेत्र बनाओ एवं ऋत्तिक बनते रहो और मेरे आदेश पर कार्य करते रहो। लोग वहाँ सहानुभूतिपूर्ण रह रहे हैं। वह जगह बहुत अच्छी है।

तमाल कृष्ण गोस्वामी : हाँ, वह कहता है, 'भगवद्-गीता की भूमिका का तमिल में अनुवाद हो चुका है और मैं दूसरा अध्याय इसके उपरान्त करवा लूँगा। फिर तुरन्त वितरण के लिए एक छाट्टी पुस्तिका का प्रकाशन करूँगा।

हंसदूत को तमाल कृष्ण गोस्वामी द्वारा पत्र (श्रील प्रभुपाद की ओर से)

३१ जुलाई, १९७७

प्रिय हंसदूत महाराज,

आपके चरण-कमलों में मेरा दण्डवत् प्रणाम स्वीकारे। मुझे श्री श्रीमद् श्रील प्रभुपाद द्वारा यह निर्देश दिया गया है कि तुम्हारे २५ जुलाई, १९७७ के पत्र के लिए तुम्हें धन्यवाद दूँ।

तुमने लिखा था कि तुम्हें यह समझ नहीं आ रहा कि श्रील प्रभुपाद ने तुम्हें अपनी कृपा का पत्र क्यों बनाया। श्रील प्रभुपाद ने तुरन्त उत्तर दिया : 'क्योंकि तुम निष्कपट सेवक हो। तुमने अपनी सुन्दर एवं योग्य पत्नी से अपनी आसक्ति को त्याग दिया, यह बहुत बड़ा वरदान है। तुम एक असली प्रचारक हो इसलिए मैं तुम्हें चाहता हूँ। (फिर हँसते हुए) कभी-कभी तुम हठी हो जाते हो, पर यह हर बुद्धिमान व्यक्ति के बारे में सत्य है। अब तुम्हारे पास प्रचार का अच्छा अवसर है। इसका संगठन करो और यह तुम्हारा बड़ा योगदान रहेगा। वहाँ तुम्हें कोई बाधा नहीं पहुँचायेगा। तुम प्रचार के लिए अवसर बनाओ, ऋत्तिक बने रहो और मेरी ओर से कार्य करो।'

जब मैंने समाचारपत्र का लेख पढ़कर सुनाया तो बड़े जोश से सुन रहे थे। श्रील प्रभुपाद अत्यन्त प्रसन्न थे : "यह लेख तुम्हारी प्रतिष्ठा बढ़ाएगा। यह बहुत अच्छा लेख है इसलिए समाचारपत्र ने इसे छापने के लिए इतनी सारी जगह दी है। यह बहुत अच्छा है। इसे 'वैक टू गॉडहेड' (भगवत् दर्शन) में प्रकाशित करना चाहिए। अभी 'वैक टू गॉडहेड' में एक स्तंभ है—'प्रभुपाद स्पीकस आउट'। तुम्हारे लेख का शीर्षक होगा—'प्रभुपाद डीसाईपल स्पीकस आउट' (प्रभुपाद के शिष्य बोले)। हाँ, हम इस लेख को अवश्य प्रकाशित करेंगे। इस मूढ़ व्यक्ति को जनता के सामने बेवकूफ होने देना चाहिए। मैंने इस लेख का बहुत आनन्द उठाया है। मैं चाहता हूँ कि मेरे शिष्य भी बोले तर्क एवं कारणों के बलवृत्ते पर 'ब्रह्मसूत्र सुनिश्चित' यही प्रचार है। मेरा आर्शिवाद तुम पर है। मेरे सभी शिष्य आगे बढ़ें। तुमने यह चुनौति दी है। वे इसका उत्तर नहीं दे सकते। इस डॉ. कोवूर को डॉ. स्वरूप दामोदर के 'लाइफ कम्स फॉम लाइफा' (जीवन का स्रोत जीवन) सम्मेलन में आमंत्रित करना चाहिए। इस वैज्ञानिक सम्मेलन से वह कुछ सीख सकता है।"

हाँ, तुम्हें इस्कॉन के 'फूड रिलीफ' (अन्नदान) की धनराशि जरूर मिलनी चाहिए। मेरा यह प्रस्ताव है कि अमरीकन पैसे इकट्ठे हो और अन्न वितरण के लिए भेज दिए जाएँ। तीन सौ लोग आ रहे हैं यह कोई मजाक नहीं। तुमने विभिन्न पकवानों का वर्णन भी किया है। मैं खाना चाहता हूँ लेकिन खा नहीं सकता। इन पकवानों के नाम ही मुझे तृप्त कर रहे हैं। आज सुबह मैं तुम्हारे बारे में सोच रहा था और तुमने मुझे यह पत्र लिखा।

(अंतिम पंक्तियाँ अस्पष्ट)

तुम्हारा सेवक
(मूल प्रति पर हस्ताक्षर अंकित है)
तमाल कृष्ण गोस्वामी
सचिव — श्रील प्रभुपाद

वार्तालाप, १८ अक्टूबर, १९७७, वृन्दावन

- श्रील प्रभुपाद : हरे कृष्ण ! एक बंगाली सज्जन न्यूयार्क से आए है ? (एक व्यक्ति न्यूयार्क से श्रील प्रभुपाद से दीक्षा लेने के लिए आया था।)
- तमाल कृष्ण गोस्वामी : हाँ। श्रील प्रभुपाद। श्री सुकमल राय चौधरी।
- श्रील प्रभुपाद : तो दीक्षा के लिए तुममें से कुछ को प्रतिनिधि बनाया है। हूँ।
- तमाल : हाँ, वास्तव में....हाँ, श्रील प्रभुपाद।
- श्रील प्रभुपाद : तो मैं सोचता हूँ कि यह जयपताका कर सकता है यदि वह चाहे तो। मैंने पहले ही प्रतिनिधित्व दे दिया है। उसे बता दो।
- तमाल : हाँ।
- श्रील प्रभुपाद : तो, हाँ कुछ प्रतिनिधि, जयपताका का नाम था ?
- भगवान : यह पहले से ही है।
- श्रील प्रभुपाद : उसका नाम सूची में था। तो वह मेरी ओर से मायापुर में कर सकता है, और तुम भी उसके साथ जा सकता हो। मैंने यह तत्काल के लिए बंद कर दिया है। क्या यह ठीक है ?
- तमाल : क्या करना बंद कर दिया है श्रील प्रभुपाद ?
- श्रील प्रभुपाद : यह दीक्षा ! मैंने इसके लिए अपने शिष्यों को नियुक्त किया है। यह स्पष्ट है या नहीं ?
- तमाल : यह स्पष्ट है।
- श्रील प्रभुपाद : तुम्हारे पास नामों की सूची है ?
- तमाल : हाँ, श्रील प्रभुपाद।
- श्रील प्रभुपाद : और यदि कृष्ण की कृपा से मेरी अवस्था सुधर जाती है तो मैं फिर से शुरू करूँगा और यदि ऐसा ना हुआ तो मुझे पर कोई दबाव न डाले। इस अवस्था में दीक्षा देना उचित नहीं है।

वार्तालाप, २२ अप्रैल, १९७७, बम्बई

- श्रील प्रभुपाद : मैंने उससे कहा, 'तुम इतने स्वतंत्र होकर नहीं कर सकते। तुम अच्छा कर रहे हो, लेकिन इस तरह से नहीं....तुम सहमत हो।' (कुछ देर शांति) लोगों ने हंसदूत के विरुद्ध शिकायत की थी। क्या तुम्हें मालूम चला ?
- तमाल : मुझे घटनाओं की बारीकी से जानकारी नहीं है, लेकिन सामान्यतः मैंने सुन था।
- श्रील प्रभुपाद : जर्मनी में। जर्मनी में.....
- तमाल : वहाँ के भक्त।
- श्रील प्रभुपाद : इतनी सारी शिकायतें।
- तमाल : इसलिए परिवर्तन अच्छा है।
- श्रील प्रभुपाद : नहीं, तुम गुरु बनो, लेकिन सबसे पहले तुम्हें योग्य होना चाहिए। फिर बनो।

- तमाल : ओह ! उस तरह की शिकायत थी ।
- श्रील प्रभुपाद : क्या तुम्हें मालूम था ।
- तमाल : हाँ, मैंने सुन था । हाँ ।
- श्रील प्रभुपाद : दृष्ट गुरु बनने का क्या उपयोग ?
- तमाल : वैसे मैंने अपने आप का और आपके सभी शिष्यों का अध्ययन किया है और यह बहुत ही स्पष्ट तथ्य है हम सब बद्ध-जीव है इसलिए हम गुरु नहीं हो सकते । हो सकता है यह एक दिन संभव हो ।
- श्रील प्रभुपाद : हूँ ।
- तमाल :लेकिन अभी नहीं ।
- श्रील प्रभुपाद : हाँ । मैं किसी को गुरु बनाऊँगा । मैं कहूँगा कौन गुरु है । अब तुम आचार्य बनो । तुम्हें प्रामाणिक गुरु बनाया गया है । मैं उसके लिए प्रतीक्षा कर रहा हूँ । तुम बनो सब, आचार्य, मैं पूरी तरह निवृत्त हो जाऊँगा । लेकिन प्रशिक्षण पूरा होना चाहिए ।
- तमाल : शुद्धिकरण की प्रक्रिया होनी चाहिए ।
- श्रील प्रभुपाद : हाँ, बिल्कुल होनी चाहिए । चैतन्य महाप्रभु यह चाहते हैं । अमार आज्ञाय गुरु हाना । तुम गुरु बनो । (हँसी) लेकिन योग्यता प्राप्त करो । छोटी सी चीज, दृढतापूर्वक अनुसरण ।
- तमाल : कृत्रिम रूप से किसी पर मोहर नहीं लगाई जा सकती कि यह गुरु है ।
- श्रील प्रभुपाद : तब तुम प्रभावशाली नहीं रहेंगे । तुम लोगों को धोखा दे सकते हो लेकिन यह प्रभावशाली नहीं होगा । जैसे हमारे गौडीय मठ को देखो, सभी लोग गुरु बनन चाहते थे, एक छोटा मंदिर और 'गुरु' । किस प्रकार का गुरु ? कोई प्रकाशन नहीं, कोई प्रचार नहीं, केवल कुछ खाना इकठठा करना । मेरे गुरु महाराज कहते थे, 'संयुक्त भोजनालय, खाने व सोने के लिए एक जगह ।'
- भावानंद : ऐसे लोग होंगे, मुझे मालूम है । ऐसे लोग होंगे जो गुरु की पदवी धारण करने की कोशिश करेंगे ।
- तमाल : यह कुछ वर्ष पूर्व हो ही रहा था । आपके गुरुभाई ऐसा ही सोच रहे थे । माधव महाराज....
- भावानंद : हाँ, बिल्कुल, हाँ एकदम कूदने के लिए तैयार ।
- श्रील प्रभुपाद : बहुत मजबूत प्रबंधन और सतर्क एवं सजग निरीक्षण की आवश्यकता है ।

वार्तालाप, ७ जुलाई, १९७७, वृंदावन

- तमाल : श्रील प्रभुपाद हमें बहुत सारे पत्र मिल रहे हैं, और ये वे लोग हैं जो दीक्षा लेना चाहते हैं । चूंकि आप बीमार हो इसलिए अभी तक तो हमने उन्हें प्रतीक्षा करने के लिए कहा था ।
- श्रील प्रभुपाद : स्थानिक लोग, वरिष्ठ संन्याशी यह कार्य कर सकते हैं ।

- तमाल : हम वही कर रहे थे..... मेरा मतलब है,पूर्व में हम लोग....स्थानक जी.वी.सी. या संन्यासी उनकी माला पर जप करते और वे आपको खत लिखते थे और आप उनको उनका आध्यात्मिक नाम देते । तो क्या उस प्रक्रिया को फिर से शुरू किया जाये, या फिर हम....? मेरा मतलब है, एक बात यह है कि यह कहा जाता है कि यह गुरु अपने ऊपर....आपको मालूम ही है, वह अपने ऊपर....वह शिष्य को शुद्ध करने के लिए....इसलिए हम यह नहीं चाहते कि आपको....उफ़....आपकी तबीयत अच्छी नहीं है, इसलिए ऐसा नहीं होना चाहिए....इसलिए हम सबसे प्रतीक्षा करने को कह रहे हैं । मैं केवल यह जानना चाहता हूँ कि क्या हम कुछ और समय तक प्रतीक्षा करना जारी रखे ।
- श्रील प्रभुपाद : नहीं । वरिष्ठ संन्यासी....
- तमाल : तो वे वही करते रहे....
- श्रील प्रभुपाद : तुम संन्यासियों की एक सूची दो । मैं उसमें अंकित कर दूँगा कि कौन करेगा....
- तमाल : ठीक ।
- श्रील प्रभुपाद : तुम कर सकते हो । कीर्तनानंद कर सकता है । और हमारा सत्स्वरूप कर सकता है । तो यह तीन, तुम दे सकते हो, शुरू करो ।
- तमाल : तो यदि कोई अमेरिका में है तो क्या उसे सीधे कीर्तनानंद या सत्स्वरूप को लिखना होगा ?
- श्रील प्रभुपाद : निकट में । जयतिर्थ कर सकता है ।
- तमाल : जयतिर्थ ।
- श्रील प्रभुपाद : भगवान । और वह भी कर सकता है । हरिकेश ।
- तमाल : हरिकेश महाराज ।
- श्रील प्रभुपाद : और....पाँच,छह लोग, तुम भाग करो, जो समीप है ।
- तमाल : जो सबसे समीप है । तो लोगों को आपको पत्र लिखना नहीं पड़ेगा ? वो सीधे ही उस व्यक्ति को पत्र लिख सकते हैं ।
- श्रील प्रभुपाद : हूँ ।
- तमाल : वास्तव में वे लोग उस व्यक्ति को आपकी ओर से दीक्षा दे रहे हैं । जो लोग दीक्षा ग्रहण करेंगे वे फिर भी आपके....
- श्रील प्रभुपाद : दूसरी दीक्षा (गायत्री दीक्षा) हम दूसरी दीक्षा पर विचार करेंगे ।
- तमाल : यह पहली दीक्षा के लिए है । ठीक है । और दूसरी दीक्षा के लिए अभी उन्हें....
- श्रील प्रभुपाद : नहीं, उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । दूसरी दीक्षा....वह देनी चाहिये ।
- तमाल : क्या....कुछ भक्त आपको दूसरी दीक्षा के लिए पत्र लिख रहे हैं,और मैं उन्हें यह लिख रहा हूँ आपकी तबीयत ठीक नहीं है । तो क्या मैं उन्हें यही बोलता रहूँ कि
- श्रील प्रभुपाद : वे दूसरी दीक्षा ले सकते हैं ।
- तमाल : आपको पत्र ले सकते हैं ।
- श्रील प्रभुपाद : नहीं । ये लोग ।

- तमाल : ये लोग। ये लोग दूसरी दीक्षा भी दे सकते हैं। अतएव पहली और दूसरी दीक्षा के लिए भक्तों को आपको पत्र नहीं लिखना पड़ेगा। वे अपने निकटतम व्यक्ति को लिख सकते हैं। लेकिन वे सब लोग फिर भी आपके शिष्य होंगे। कोई भी व्यक्ति जो दीक्षा देगा वह आपकी ओर से देगा।
- श्रील प्रभुपाद : हाँ।
- तमाल : जैसा आपको मालूम है कि मैं आपके सारे शिष्यों के नाम की एक पुस्तक रखे हुए हूँ? क्या मैं उसे जारी रखूँ?
- श्रील प्रभुपाद : हूँ।
- तमाल : यदि कोई दीक्षा देते हैं, जैसे- हरिकेश महाराज, तो उन्हें उस व्यक्ति का नाम हमें यहाँ भेजना चाहिए और मैं उसे इस पुस्तक में लिख दूँगा। ठीक है। क्या भारत में कोई और है जिससे आप यह करवाना चाहेंगे?
- श्रील प्रभुपाद : भारत? मैं यहाँ हूँ। हम देखेंगे। भारत में, जयपताका।
- तमाल : जयपताका महाराज।
- श्रील प्रभुपाद : तुम भी भारत में हो। तुम इन नामों को लिख लो।
- तमाल : हाँ, मैंने लिख लिये हैं।
- श्रील प्रभुपाद : वे कौन हैं?
- तमाल : कीर्तनानंद महाराज, सतस्वरूप महाराज, जयतिर्थ प्रभु, भगवान प्रभु, हरिकेश महाराज, जयपताका महाराज और तमाल कृष्ण महाराज।
- श्रील प्रभुपाद : यह ठीक है। तुम इसका वितरण करो।
- तमाल : सात। यहाँ सात नाम हैं।
- श्रील प्रभुपाद : अभी के लिए सात नाम काफी हैं... तुम बना सकते हो, रामेश्वर।
- तमाल : रामेश्वर महाराज।
- श्रील प्रभुपाद : और हृदयानंद।
- तमाल : अरे हाँ, दक्षिण अमेरिका।
- श्रील प्रभुपाद : तो बिना मेरी प्रतिकक्षा किए, जिसको भी तुम योग्य समझो उसे... यह (तुम्हारे) न्याय पर निर्भर होगा।
- तमाल : न्याय पर।
- श्रील प्रभुपाद : हाँ।
- तमाल : यह पहली और दूसरी दीक्षा के लिए।
- श्रील प्रभुपाद : हूँ।
- तमाल : क्या मैं एक कीर्तन मंडली को भेजूँ, श्रील प्रभुपाद?

‘पिरामिड हाउस कन्फेशनस’ (पिरामिड नामक घर में तमाल कृष्ण महाराज द्वारा दोष स्वीकारना) ३ दिसम्बर, १९८०, लॉस एंजिल्स

तमाल कृष्ण महाराज : कुछ दिनों पूर्व मैं कई चीजों का साक्षात्कार कर पाया हूँ....स्पष्टस्वरूप से श्रील प्रभुपाद द्वारा ऐसे कथन हैं कि उनके गुरु महाराज ने किसी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया था। अपनी पुस्तकों में भी श्रील प्रभुपाद कहते हैं कि योग्यता के आधार पर है कोई गुरु हो सकता है।

यह प्रेरणा मिली; क्योंकि मेरे द्वारा प्रश्न उठाया गया था, इसलिए कृष्ण बोले। वास्तव में प्रभुपाद ने कभी किसी को गुरु नियुक्त नहीं किया था। उन्होंने ग्यारह ऋत्विकों को नियुक्त किया था। श्रील प्रभुपाद ने उन्हें कभी गुरु के रूप में नियुक्त नहीं किया था। मैंने और अन्य जी.वी.सी.यों ने पिछले तीन वर्षों में इस आन्दोलन को बहुत बड़ी हानि पहुँचायी है; क्योंकि हम गलत अर्थ निकालकर ऋत्विकों को नियुक्त को गुरु की नियुक्ति मान बैठे।

मैं यह बताता हूँ कि वास्तव में क्या हुआ। मैंने इसका वर्णन किया था लेकिन इसका गलत अर्थ निकाला गया था। वास्तव में हुआ यह कि श्रील प्रभुपाद बोले कि वे कुछ ऋत्विकों की नियुक्ति करने की सोच रहे हैं और तब अनेक कारणोंवश जी.वी.सी. द्वारा अपनी एक बैठक बुलाई गई और वे प्रभुपाद के पास गए, हममें से पाँच या छह लोग। (यहाँ २८ मई, १९७७ के वार्तालाप की बात हो रही है) हमने उनसे पूछा, ‘श्रील प्रभुपाद आपके चले जाने के बाद यदि हम शिष्य स्वीकार करते हैं तो वे किसके शिष्य होंगे, आपके या मेरे।’

कुछ समय दीक्षा चाहने वालों कि सूची का ढेर बन गया था। और ये पत्र भरे पड़े थे। मैंने कहा, ‘श्रील प्रभुपाद आपने एक बार ऋत्विकों की चर्चा की थी। मुझे मालूम नहीं करना चाहिए। हम आपके पास नहीं आना चाहते लेकिन हजारों भक्तों के नाम आ चुके हैं और मैं उन पत्रों को अपने पास रखे हुए हूँ। मुझे यह मालूम नहीं है कि आप क्या करना चाहते हैं।’

श्रील प्रभुपाद बोले, ‘इतने लोगों को नियुक्त करूँगा....और वे उनके नाम बताने लगे। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि वे उनके शिष्य हैं। तब मेरे मन में यह बहुत स्पष्ट था कि वे सब (नए दीक्षित शिष्य) उनके शिष्य थे। उसके कुछ समय बाद मैंने उनसे दो प्रश्न पूछे। पहला : ब्रह्मानंद स्वामी के बारे में आप क्या कहते हैं ? मैंने उनसे यह पूछा क्योंकि मेरे हृदय में उनके लिए स्नेह था....तो श्रील प्रभुपाद बोले, ‘नहीं योग्य होने पर ही’। जब मैं ही पत्र को टाइप करने के लिए तैयार हुआ तब मैंने दूसरा प्रश्न किया : श्रील प्रभुपाद इतने बहुत हैं या आप और नाम इसमें जोड़ना चाहते हैं ? वे बोले, ‘जैसी आवश्यकता हो वैसे अन्य लोगों को इसमें सम्मिलित किया जा सकता है।’

अब मुझे समझ आ रहा है कि उन्होंने जो किया वह बहुत ही स्पष्ट था। वे शारीरिक रूप से दीक्षा का संस्कार सम्पन्न करने में असक्षम हो गए थे इसलिए उन्होंने ‘आफिशियेटिंग प्रीस्ट्स’ (दीक्षा संस्कार सम्पन्न करने वाले पुजारियों) को उनकी ओर से दीक्षा देने के लिए नियुक्त किया था। उन्होंने ग्यारह को नियुक्त किया और यह स्पष्ट रूप से कहा कि ‘जो भी निकट है वह दीक्षा दे सकता है’। यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि जब दीक्षा लेने का प्रश्न उठता है तो उसका आधार यह नहीं कि जो भी निकटतम हो उससे ली जाए बल्कि जहाँ हृदय जाये वहाँ। जिस पर तुम्हारी श्रद्धा हो उससे तुम दीक्षा लोगे।

लेकिन जब प्रतिनिधियों द्वारा दीक्षा देने की बात आती है तो जो भी निकट है उससे ले सकते हैं औ वे इस बात पर बहुत ही स्पष्ट थे। उन्होंने उनको मनोनित किया था। वे लोग दुनिया में सभी जगह फैले हुए थे। उन्होंने कहा, 'जो भी तुम्हारे पास है तुम उसके पास जाओ। वह तुम्हारी परीक्षा लेगा और उसके बाद मेरी ओर से दीक्षा देगा।'

यह जरूरी नहीं कि उसके प्रति तुम्हारे मन में श्रद्धा होनी चाहिए। वह तो गुरु के लिए होती है। 'इस आंदोलन के संचालन के लिए मुझे जी.वी.सी. का निर्माण करना होगा और इसके लिए मैं निम्नलिखित लोगों को नियुक्त करूँगा। यदि इस आन्दोलन में नए लोगों के सम्मिलित होने व दीक्षा लेने की प्रक्रिया को जारी रखना है तो मुझे कुछ पुजारियों को नियुक्त करना होगा जो मेरी मदद कर सकेंगे। मैं शारीरिक रूप से सबका अकेला संचालन नहीं कर सकता इसलिए मुझे कुछ पुजारियों को नियुक्त करना होगा।

बस यही सब कुछ था और इससे ज्यादा कुछ नहीं। तुम यह शर्त लगाकर कह सकते हो कि यदि वे वर्तमान में चलित गुरु प्रणाली चाहते तो इसको स्थापित करने के विषय में वे कई घंटों, कई दिनों, कई सप्ताहों तक चर्चा करते; क्योंकि वे लाखों बार कह चुके थे, 'मेरे गुरु महाराज ने किसी को नियुक्त नहीं किया था। यह योग्यता पर आधारित है।' हमने बहुत बड़ी गलती की है। प्रभुपाद के प्रस्थान के बाद इन ग्यारह लोगों की क्या स्थिति है ?.....

प्रभुपाद ने केवल संन्यासियों को ही नहीं बल्कि दो गृहस्थों के भी नाम बतलाये, ऋत्विक् बनाया, जिससे यह प्रतीत होता है कि 'ये गृहस्थ संन्यासी के बराबर थे। अतः जो भी योग्य हो सामान्यतः यह समझा जाता है कि गुरु की उपस्थिति में शिष्य ग्रहण नहीं किए जा सकते लेकिन गुरु के चले जाने के बाद शिष्य ग्रहण किये जा सकते हैं। यदि कोई तुम्हारे प्रति श्रद्धा रखता है तो उसे शिष्य बनाया जा सकता है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि भावि शिष्य को पूरी तरह से यह समझाया जाना चाहिए कि प्रमाणिक गुरु को कैसे चुने। यदि तुम प्रमाणिक गुरु हो और तुम्हारे गुरु अब नहीं रहे तब यह तुम्हारा अधिकार है। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार हर मनुष्य संतान पैदा कर सकता है....दुर्भाग्यवश जी.वी.सी.ने इस तथ्य को स्वीकारा नहीं। उन्होंने तुरन्त ही (मान लिया) कि ये ग्यारह लोग ही चुने हुए गुरु हैं। मे अने लिए तो यह कह सकता हूँ और इसके लिए मैं सभी लोगों से नम्रतापूर्वक क्षमायाचना करता हूँ कि निश्चित रूप से इसमें कुछ हद तक अन्यों को अपने वशीभूत करने की प्रवृत्ति उपस्थित है। यह एक बद्ध-जीव का स्वभाव है और यह सबसे ऊँचे स्थान गुरु बनने की चेष्टा में प्रकट हुआ है। 'गुरु ,ओह अदभुत। मैं अब गुरु हूँ और केवल हम ग्यारह लोग ही हैं....।

मुझे लगता है कि यह समझ बहुत महत्त्वपूर्ण है जिससे भविष्य में ऐसी किसी और दुर्घटना को रोक जा सके। मैं कहता हूँ कि भविष्य में यह फिर से होगा। केवल कुछ समय की देर है और जब स्थिति को लोग भूल जाएँगे फिर ऐसी दुर्घटना अपने आप को दोहराएगी चाहे वो लॉस एंजिल्स में हो या कहीं और। यह निरन्तर होता रहेगा तब तक जब तक तुम वास्तविक कृष्ण शक्ति को बिना रोक-टोक के प्रदर्शित होने नहीं दोगे। मुझे लगता है कि यदि जी.वी.सी. तुरन्त ही इस बात को नहीं अपनाएगी या यह साक्षात्कार नहीं करेगी.... तुम मुझे कोई भी 'टेप' या पुस्तक नहीं दिखा सकते जहाँ प्रभुपाद कह रहे हों, मैं इन ग्यारह लोगों को गुरु के रूप में नियुक्त करता हूँ'। इसका अस्तित्व नहीं है, क्योंकि प्रभुपाद ने कभी किसी को गुरु के रूप में नियुक्त नहीं किया। यह एक भ्रम है, आडम्बर है।जिस दिन तुम दीक्षा ग्रहण करते हो उसी दिन से तुम्हारे पिता के चले जाने पर तुम्हें पिता होने का अधिकार प्राप्त होता है यदि तुम योग्य हो। नियुक्त नहीं। इसके लिए नियुक्त की जरूरत नहीं; क्योंकि किसी की नियुक्ति हुई ही नहीं।

(vi) जिदण्डी गोस्वामी
ए.सी भक्तिवेदान्त स्वामी
संस्थापक आचार्य : अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ
शाखा : कृष्ण-बलराम मंदिर
भक्ति वेदान्त स्वामी मार्ग,
रमनरेती, वृन्दावन (उ.प्र.)
दिनांक : ४ जून, १६७७

वसीयत की घोषणा

मै, ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद, अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ का संस्थोक आचार्य, भक्तिवेदान्त स्वामी बुक ट्रस्ट का 'सेटलर' और ऊँ विष्णुपाद १०८ श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी महाराज प्रभुपाद का शिष्य वर्तमान में वृन्दावन में कृष्ण-बलराम का निवासी इसको अपनी आखिरी वसीयत (इच्छा) बनाता हूँ।

१. 'गवर्निंग बॉडी कमीशन' (जी.बी.सी.) संपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ की सर्वोत्तम प्रशासकीय अधिकारी होगी।
२. हर मंदिर इस्कॉन की सम्पत्ति होगा और इसका प्रबन्ध 'एकजीक्यूटिव डाइरेक्टर्स' (कार्यकारी निर्देशको) द्वारा होगा। यह प्रबन्धन प्रणाली जिस प्रकार चल रही है उसी प्रकार चलती रहेगी और किसी भी तरह के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।
३. भारत में सम्पत्तियों का संचालन निम्नलिखित 'एकजीक्यूटिव डाइरेक्टर्स' (कार्यकारी निर्देशको) करेंगे :
 - क. श्री मायापुर धाम, पानीहाटी, हरिदासपुर और कलकत्ता की सम्पत्तियाँ : गुरु कृपा स्वामी, जयपताका स्वामी, भावनंद गोस्वामी और गोपाल कृष्ण दास अधिकारी।
 - ख. वृन्दावन की सम्पत्ति : गुरु कृपा गोस्वामी, अक्षयानंद स्वामी और गोपाल कृष्ण दास अधिकारी।
 - ग. बम्बई की सम्पत्ति : तमाल कृष्ण गोस्वामी, गिरिराज दास ब्रह्मचारी और गोपाल कृष्ण दास अधिकारी।
 - घ. भुवनेश्वर की सम्पत्ति : गौर गोविन्द स्वामी, जयपताका स्वामी और भगवत दास ब्रह्मचारी।
 - ङ. हैदराबाद की सम्पत्ति : महांस स्वामी, श्रीधर स्वामी, गोपाल कृष्ण दास अधिकारी और बली मर्दन दास अधिकारी।

ये कार्यकारी निर्देशक, जिनको उपर्युक्त पदवियाँ दी गई हैं उन्हें सम्पूर्ण जीवन के लिए नियुक्त किया जाता है। उपर्युक्त निर्देशक यदि मृत्यु के कारण या किसी अन्य कारणवश कार्य करने में असफल हो जाएँ तो एक या एक से ज्यादा उत्तराधिकारी निर्देशक आपस में मिलकर चुन सकते हैं इस शर्त पर कि निर्देशक मेरा दीक्षित शिष्य हो, जो दृढतापूर्वक अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ

के सभी नियमों का, जिनका सम्पूर्ण वर्णन मेरी पुस्तकों में है, पालन कर रह हो। ओर इस शर्त पर कि एक समय में तिन (३) से कम या पाँच (५) से ज्यादा कार्यकारी निर्देशक कार्यरत न हो।

४. मैंने अंतराष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ की सृष्टि की है, इसका विकास किया है एवं इसका संगठन भी किया है और अब मैं यह चाहता हूँ कि भारत में इस्कॉन के नाम पर पंजीकृत सारी सम्पत्तियों को कभी भी गिरवी, बिक्री, किसी अन्य के नाम पर स्थानान्तरित नहीं की जाए या किसी रूप से क्षति न पहुँचाई जाए, किसी को भेट या दान स्वरूप न दी जाए व इनके स्वामित्व को हस्तान्तरित नहीं किया जाए। यह निर्देश अपरिवर्तनीय है।
५. भारत के बाहर स्थित सारी सम्पत्तियों को मूलतः कभी गिरवी न रखा जाए, या इसको किसी चीज के बदले में न दिया जाए या इसकी बिक्री नहीं की जाए एवं किसी के नाम हस्तान्तरित न किया जाए। लेकिन यदि जरूरत पड़े तो इन्हें उसके साथ जुडे जी.बी.सी. समिति के सदस्यों कि सहमति से गिरवी रखा जा सकता है, इसका आदान-प्रदान किया जा सकता है या इसकी बिक्री इत्यादी की जा सकती है।
६. भारत के बाहर स्थित सम्पत्तियाँ और उससे जुडे जी.बी.सी. समिति सदस्य निम्नलिखित है :
 - क. शिकागो, डेट्रॉइट और एनन आर्बर की सम्पत्तियाँ : जयतिर्थ दास अधिकारी, हरिकेश स्वामी और बलवंत दास अधिकारी।
 - ख. हवाई, टोक्यो एवं हांगकांग की सम्पत्तियाँ : गुरु कृपा स्वामी, रामेश्वर स्वामी और तमाल कृष्ण गोस्वामी।
 - ग. मेलबार्न, सिडनी एवं आस्ट्रेलिया फार्म की सम्पत्तियाँ : गुरु कृपा स्वामी, हरी सौरी और अजेय ऋषि।
 - घ. इंग्लैंड (लंडन रेडलेट), फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैंड, स्वीडन की सम्पत्तियाँ : जयतिर्थ दास अधिकारी, भगवान दास अधिकारी और हरिकेश स्वामी।
 - ङ. केन्या, मारिशस, दक्षिण अफ्रीका की सम्पत्तियाँ : जयतिर्थ दास अधिकारी, ब्रह्मानंद स्वामी और अजेय ऋषि।
 - च. मैक्सिको, वेनेजुएला, बाजील, कोस्टारिका, पेरू, इक्वेडोर, कोलम्बिया, चिली की सम्पत्तियाँ : हृदयानंद गोस्वामी, पंचद्रविड स्वामी और ब्रह्मानंद स्वामी।
 - छ. जोर्जटाउन, गुयाना, सांता डोमिंगो, सेंट आगस्टीन की सम्पत्तियाँ : आदि केशव स्वामी, हृदयानंद गोस्वामी और पंचद्रविड स्वामी।
 - ज. वेन्कुवर, सिआटल, बरक्ली, डलास की सम्पत्तियाँ : सत्स्वरूप दास गोस्वामी, जगदीश दास अधिकारी और जयतिर्थ दास अधिकारी।
 - झ. लॉस एंजिल्स, डेन्वर, सन डीआगो, लैगूना-बिच की सम्पत्तियाँ : रामेश्वर स्वामी, सत्स्वरूप दास गोस्वामी और आदि केशव स्वामी।
 - ञ. न्यूयार्क, बोस्टन, प्यूर्टोरिको, पोर्ट रायल, सेंट लूईस, सेंट लूईस फार्म की सम्पत्तियाँ : तमाल कृष्ण गोस्वामी, आदि केशव स्वामी और रामेश्वर स्वामी।
 - ट. ईरान की सम्पत्तियाँ : अजेय ऋषि, भगवान दास अधिकारी और ब्रह्मानंद स्वामी।
 - ठ. वाशिंगटन डी.सी., बाल्टिमोर, फिलाडेल्फिया, मांट्रियल और ओटावा की सम्पत्तियाँ : रूपानुग दास अधिकारी, गोपाल कृष्ण दास अधिकारी और जगदीश दास अधिकारी।

- ड. पिट्सबर्ग, न्यू वृदावन, टोरंटो, क्लीवलैंड, बफैलो की सम्पत्तियाँ : कीर्तनानंद स्वामी, अजेय ऋषि और बलवंत दास अधिकारी ।
- ढ. अटलांटा, टेनेसी फार्म, गेन्सविल, मायामी, न्यू आरालियन्स, मिसीसिप्पी फार्म, हाउस्टन : बलवंत दास अधिकारी, आदि केशव स्वामी और रूपानुगा दास अधिकारी ।
- ण. फिजी की सम्पत्तियाँ : हरि सौरी, अजेय ऋषि और वासुदेव ।
७. मैं यह घोषणा करता हूँ और इसकी पुष्टि करता हूँ कि सभी सम्पत्तियाँ स्थायी और अस्थायी, जो मेरे नाम पर हैं और क्रेन्ट अकाउन्ट्स (चालू खाता), सेविंग्स अकाउन्ट्स (बचत खाता), और फिक्स्ड डिपोजिट्स (स्थायी जमा पूँजी), जो विभिन्न बैंकों में हैं, अंतराष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ की सम्पत्ति हैं एवं इस्कॉन की जायदाद हैं । मेरे पूर्व जीवन के उत्तराधिकारी यदि इन पर अपना अधिकार सिद्ध करने की कोशिश करें तो उनका इन सम्पत्तियों पर कोई अधिकार नहीं है, न ही उनका इसमें कोई दावा या रुचि है । निम्नलिखित व्यवस्था के आलावा उनका कोई अन्य अधिकार नहीं है ।
८. हालांकि विभिन्न बैंकों में जो पैसा है वो मेरे नाम पर है और इसका व्यय इस्कॉन कर रहा है और यह इस्कॉन का है फिर भी मैंने कुछ राशि बैंक में डिपोजिट के रूप में रखी है ताकि मेरे पूर्व परिवार के सदस्यों को इसमें से हर एक को १०००/- रुपये मासिक भत्ता प्राप्त हो (दो बेटे, दो बेटियाँ और पत्नी) । इन सदस्यों की मृत्युपरांत यह बचत की धन राशि जो डिपोजिट्स (कोपर्स, ब्याज राशि और बचत) के रूप में है, इस्कॉन की सम्पत्ति बन जाएगी । और मेरे पूर्व परिवार के वंशज या कोई और यदि दावा करते हैं तो उन्हें और कोई भत्ता नहीं दिया जाना चाहिए ।
७. मैं गुरु कृपा स्वामी, हृदयानंद गोस्वामी, तमाल कृष्ण गोस्वामी, रामेश्वर स्वामी, गोपाल कृष्ण दास अधिकारी, जयतिर्थ दास अधिकारी और गिरिराज दास ब्रह्मचारी को इस वसीयात के कार्यकारियों के रूप में नियुक्त करता हूँ । मैंने यह वसीयत जून के चौथे दिन १६७७ में अपने पूरे होश और स्थिर मन से और बिना किसी दबाव या किसी की बातों में आकर बनायी है ।

ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी

गवाह :

इस उपर्युक्त वसीयात पर श्रील प्रभुपाद ने हस्ताक्षर किये हैं और इसे सील करने व इसके गवाही के लिए निम्नलिखित व्यक्ति उपस्थित थे : तमाल कृष्ण गोस्वामी, भगवान दास अधिकारी और कई अन्य गवाह । (मूल प्रति पर हस्ताक्षर अंकित)

मै, ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद, एक संचालिका और अंतरराष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ का संस्थापक आचार्य, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट का 'सेटलर' और ऊँ विष्णुपाद १०८ श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी महाराज प्रभुपाद का शिष्य वर्तमान में वृन्दावन के कृष्ण-बलराम मंदिर का निवासी अपनी वसीयत व 'कोडिसिल'(वसीयत में संशोधन) बनाता हूँ जिससे मेरे विचार जो मेरी पिछली वसीयत दिनांक ४ जून, १९७७ में कुछ हद तक अस्पष्ट प्रतीत होते हैं उनका स्पष्टिकरण हो सके। यह इस प्रकार है :

मैने ४ जून, १९७७ को एक वसीयत बनायी थी, जिसमें मैने कुछ प्रबन्ध किए थे। उसमें श्री एम.एम. डे, वृन्दावन चन्द्र डे, कु. भक्तिलता डे और सुलक्षमणा डे, जो मेरे गृहस्थ आश्रम में मेरे द्वारा उत्पन्न हुए थे, और श्रीमती राधारानी डे, जो गृहस्थ आश्रम में मेरी पत्नी थी, इन सबके लिए आजीवन जीवन-निर्वाह भत्ते का प्रबन्ध है जो वसीयत की ८ वी पंक्ति में उल्लेखित है। चूँकी ध्यान से देखने पर मुझे यह लगा कि ये पंक्तियाँ मेरे विचार स्पष्ट रूप से नहीं दर्शाती हैं इसलिए मै अब यह निर्देश दे रहा हूँ कि राधारानी डे को आजीवन १०००/- रुपये की मासिक आय प्राप्त होगी। यह आय एक लाख बीस हजार रुपये की राशि को इस्कॉन ७ साल के लिए जिस बैंक में उचित समझे उसमें नकद राशि स्थायी जमा पूँजी के रूप में जमा कराएगा। यह मासिक आय उसके उत्तराधिकारियों को उपलब्ध नहीं होगी। और उसकी मृत्यु के बाद यह राशि इस्कॉन के अधिकारियों व निर्देशकों द्वारा जिस प्रकार संस्था के लिए उचित हो उस प्रकार उसका प्रयोग किया जाएगा।

जहाँ तक श्री एम.एम. डे, श्री वृन्दावन चन्द्र डे, श्रीमती सुलक्षमणा डे और कु.भक्तिलता डे का प्रश्न है उनके लिए इस्कॉन एक लाख बीस हजार रूपाये के चार 'फिक्स्ड डिपोजिट्स' (स्थायी जमा राशि) बनाएगा। हर 'डिपोजिट'(जमा राशि) एक लाख बीस हजार रुपये का होगा। यह सात साल की अवधि के लिए होगा और इससे कम से कम १०००/- रुपये प्रतिमाह का ब्याज हर स्थायी जमा राशि पर मिलेगा। अपने-अपने स्थायी जमा राशि से मिलने वाले ब्याज १०००/- रुपयों में उन्हें केवल २५०/- रुपये प्रतिमाह दिया जाएगा और बाकी ७५०/- रुपये प्रतिमाह की रकम एक दूसरी नई स्थायी जमा कर दी जाएगी। यह उनके व्यक्तिगत नामों पर जमा की जाएगी जो सात साल तक के लिए होगी। सात साल पूरे होने पर मासिक ब्याज ७५०/- रुपयों द्वारा सात साल तक जमा की गई कुल धनराशि को उपर्युक्त नामांकित व्यक्ति 'गवर्नमेंट बॉण्ड' (सरकारी प्रतिज्ञा-पत्र) अथवा 'फिक्स्ड डिपोजिट रिसेप्ट्स (स्थायी जमा राशि रसीद) अथवा सरकारी जमा योजना में लगा सकते हैं अथवा इससे स्थायी जायदाद (सम्पत्ति) खरीद सकते हैं जिससे धनराशि सुरक्षित रहे और खत्म ना हो जाए। यदि उपर्युक्त इन नियमों का उल्लंघन कर धनराशि को किसी और उद्देश हेतु खर्च करे है तब इस्कॉन के कार्यकारी निर्देशक उनके मासिक भत्ते को बंद करने के लिए स्वतंत्र है, जो उन्हें एक लाख बीस हजार रुपये की मूल जमा राशि के ब्याज के रूप में प्राप्त होता था। फिर वे ब्याज की रकम को 'भक्तिवेदान्त स्वामी चैरिटी ट्रस्ट' में जमा कर सकते हैं। यह बहुत स्पष्ट किया जाता है कि उपर्युक्त व्यक्तियों के उत्तराधिकारियों का उपर्युक्त राशि पर कोई अधिकार नहीं होगा। चूँकी यह राशि उपर्युक्त व्यक्तियों (जो मेरे पूर्व जीवन के पारिवारिक सदस्य हैं) के निजी उपयोग के लिए ही है और वह भी उनके जीवनकाल तक ही।

मैने अपनी वसीयत के लिए कुछ कार्यकारियों को नियुक्त किया है। मेरी ४ जून, १९७७ की वसीयत में मैने जिन कार्यकारियों को नियुक्त किया था उनमें मै अब श्री जयपताका स्वामी, जो मेरे शिष्य हैं और श्री मायापुर

चन्द्रोदय मन्दिर, जिला नाडिया, पश्चिम बंगाल के निवासी है, को भी कार्यकारी के रूप में सम्मिलित करता हूँ। मैं यहाँ आगे निर्देश देता हूँ कि मेरी वसीयत के अन्तर्गत अपने कर्तव्यों को व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से पूरा करने के लिए मेरे कार्यकारियों को पूरा अधिकार है।

मैं इस प्रकार उपर्युक्त उल्लेख के अनुसार अपनी ४ जून, १६७७ की वसीयत में सुधार, संशोधन व परिवर्तन करता हूँ। सभी माइनों में यह वसीयत हमेशा अपनी स्थिति बनाए रखेगी और भविष्य में सभी सदा पालनीय रहेगी।

मैं इस नवम्बर के ५वें दिन, १६७७ को यह 'बिल कोडिसिल' अपने पूरे विवेक, स्थिर मन एवं बिना किसी की बातों में आकर व बिना किसी जोर जबर्दस्ती के बना रहा हूँ।

गवाह :

(मूल प्रति पर हस्ताक्षर अंकित)

ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी

क्या गुरु को सशरीर उपस्थित होना अनिवार्य है ?

सशरीर उपस्थिति महत्त्वपूर्ण नहीं है। गुरु द्वारा प्राप्त दिव्य वाणी की उपस्थिति ही जीवन में मार्गदर्शक होनी चाहिए। यही हमारे आध्यात्मिक जीवन को सफल बनाएगी। यदि तुम्हें मेरी अनुपस्थिति का अत्यधिक आभास हो रहा है तो मेरे बैठने के स्थानों पर मेरे चित्र (फोटो) रख दो और यह तुम्हारे लिए प्रोत्साहन का स्रोत बनगा।

(ब्रह्मानंद तथा अन्य शिष्यों को श्रील प्रभुपाद का पत्र, १६/१/६७)

परन्तु सदा याद रखो कि मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ। जिस प्रकार तुम हमेशा मेरा चिन्तन करते रहते हो उसी प्रकार मैं भी हमेशा तुम्हारे बारे में सोचता हूँ। चाहे हम शारीरिक रूप से एक साथ न हों फिर भी हमारी आत्मा अलग नहीं है। अतः हमें इस आध्यात्मिक संबंध के बारे में ही चिन्तन करना चाहिए।

(गौर सुन्दर को श्रील प्रभुपाद का पत्र, १३/११/६६)

इस तरह हमें वाणी (प्रकंपन) द्वारा संग करना चाहिए, भौतिक उपस्थिति द्वारा नहीं। यही सच्ची संगत है।

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, १८/८/६८, मांट्रियल)

उपस्थिति को दो प्रकार से समझा जा सकता है – सशरीर उपस्थिति और वाणी की उपस्थिति। सशरीर उपस्थिति नश्वर है जबकि वाणी की शाश्वत है.... जब हमें कृष्ण और गुरु से वियोग की अनुभूति हो तब हमें केवल उनके आदेशों के शब्दों को याद करना चाहिए और फिर यह वियोग का अभास नहीं रहेगा। कृष्ण और गुरु से इस प्रकार का संग वाणी का संग होना चाहिए, शारीरिक उपस्थिति का नहीं। यही सच्चा संग है।

(कृष्ण भावनामृत की प्राप्ति, अध्याय ४)

यद्यपि भौतिक दृष्टि से श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद इस जगत से सन् १६३६ के दिसम्बर के आखरी दिन को प्रस्थान कर चुके हैं फिर भी अब भी मैं यही मानता हूँ कि वे अपनी वाणी, अपनी शब्दों द्वारा मेरे साथ हमेशा उपस्थित हैं। संग करने के दो तरीके होते हैं : वाणी से और वपु से। वाणी अर्थात् शब्द और वपु अर्थात् सशरीर उपस्थिति। सशरीर उपस्थिति का कभी लाभ उठाया जा सकता है और कभी नहीं। अन्य शब्दों में सशरीर उपस्थिति का लाभ हमेशा नहीं उठाया जा सकता। लेकिन वाणी अनंतकाल तक विद्यमान रहती है। अतएव व्यक्ति को वाणी का ही लाभ उठाना चाहिए, सशरीर उपस्थिति का नहीं।

(चैतन्य चरितामृत, अंत्य, निष्कर्ष में कह गये शब्द)

अतः हमें वाणी का लाभ उठाना चाहिए, सशरीर उपस्थिति का नहीं।

(श्रील प्रभुपाद का पत्र सूची देवी दासी को, ४/११/७५)

मैं तुम्हारे निजी मार्गदर्शक बना रहूँगा चाहे सशरीर उपस्थित रहूँ या सशरीर नहीं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मुझे गुरु महाराज द्वारा व्यक्तिगत मार्गदर्शन मिल रहा है।

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, १४/७/७७, वृन्दावन)

यह गलत धारणा है कि भक्तियुत सेवा में रत भक्तों से यदि किसी को संग करना है तो वह अपनी आर्थिक समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। इस तर्क का उत्तर देने के लिए यहाँ यह वर्णन किया गया है कि व्यक्ति को मुक्तात्माओं का संग करना चाहिए लेकिन प्रत्यक्ष रूप से नहीं, सशरीर रूप से नहीं, बल्कि जीवन की समस्याओं का दर्शन एवं द्वारा समझकर।

(श्रीमद्-भागवतम्, ३/३१/३८, भावार्थ)

मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ। चिन्ता ना करो अगर मैं सशरीर अनुपस्थित रह रहूँ।

(जयानंद को श्रील प्रभुपाद का पत्र, १६/६/६७)

परमानंदा : हम हमेशा आपकी उपस्थिति का तीव्र अनुभव कर रहे हैं, श्रील प्रभुपाद केवल आपके उपदेशों और आदेशों द्वारा। हम सदैव आपके आदेशों पर चिन्तन कर रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद : धन्यवाद। यही सच्ची उपस्थिति है। सशरीर उपस्थिति महत्त्वपूर्ण नहीं होता।

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, ६/१०/७७, वृन्दावन)

तुमने लिखा है कि तुम मेरा संग पाने को फिर इच्छुक हो, लेकिन तुम यह क्यों भूल गई हो कि तुम हमेशा मेरे संग में हो ? जब तुम मेरे आन्दोलन के कार्य में सहायता कर रहे हो तो मैं हमेशा तुम्हारे बारे में सोच रहा हूँ और तुम भी हमेशा मेरे बारे में सोच रही हो। यही सच्चा संग है। जिस तरह मैं प्रति क्षण अपने गुरु महाराज के बारे में सोच रहा हूँ यद्यपि वे सशरीर विद्यमान नहीं हैं और चूँकि मैं अपनी पूरी क्षमता से उनकी सेवा करने की कोशीश कर रहा हूँ, मुझे पूरा विश्वास है कि वे अपना आशीर्वाद देकर मेरी सहायता कर रहे हैं। अतः दो प्रकार के संग होते हैं : सशरीर और उपदेशात्मक संग जितना महत्त्वपूर्ण नहीं होता।

(गोविन्द दासी को श्रील प्रभुपाद का पत्र, १८/८/६६)

जहाँ तक मेरे आशीर्वाद का सवाल है इसके लिए मेरी सशरीर आवश्यक नहीं है। यदि तुम वहाँ हरे कृष्ण महामंज का जप कर रहे हो, और मेरे आदेशों का पालन कर रहे हो, मेरी पुस्तकें पढ़ रहे हो, केवल कृष्ण प्रसाद ले रहे हो, इत्यादी तब तुम्हें उन भगवान श्री चैतन्य महाप्रभु के आशीर्वाद न मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता, जिनके आन्दोलन को मैं विनम्रतापूर्वक आगे बढ़ाने की कोशीश कर रहा हूँ।

(बाल कृष्ण को श्रील प्रभुपाद का पत्र, ३०/६/७४)

जो भगवान व गुरु में अटूट आस्था रखता है उसके लिए शास्त्रों का अर्थ अपने आप स्पष्ट हो जाता है। इसलिए अपनी अभिरूचि जारी रखो और तुम अपनी आध्यात्मिक प्रगति में सफल रहोगे। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि मैं तुम्हारे सामने सशरीर रूप से उपस्थित न भी रहूँ तब भी यदि तुम उपर्युक्त तत्त्वों का पालन करोगे तो तुम कृष्ण भावनामृत में अपने सारे आध्यात्मिक कर्तव्यों को निभाने में सक्षम रहोगे।

(सुबाल को श्रील प्रभुपाद का पत्र, २६/६/६७)

अतएव यद्यपि भौतिक शरीर उपस्थित न हो, वाणी को ही गुरु की उपस्थिति समझना चाहिए, वाणी। जो हमने गुरु से सुन है, वही सजीव है।

(श्रील प्रभुपाद का प्रवचन, १३/१/६६, लॉस एंजिल्स)

भक्त : तो कभी-कभी गुरु बहुत दूर होते हैं। वे लॉस एंजिल्स में हो सकते हैं। कोई हेमवर्ग मंदिर में आता है और सोचता है, 'गुरु को किस प्रकार संतुष्ट किया जाए' ?

श्रील प्रभुपाद : केवल उनके आदेशों का पालन करो, गुरु अपने शब्दों द्वारा तुम्हारे साथ हैं। जिस तरह मेरे गुरु सशरीर उपस्थित नहीं हैं, लेकिन मैं उनके शब्दों द्वारा उनका संग कर रहा हूँ।

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, १८/८/७१, लन्दन)

जिस तरह मैं काम कर रहा हूँ, तो मेरे गुरु महाराज उपस्थित हैं, भक्ति सिद्धान्त सरस्वती। सशरीर शायद दे नहीं हैं, लेकिन हर कार्य में वे उपस्थित हैं।

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, २७/५/७७, वृन्दावन)

तो उसे प्राकृत कहते हैं, सशरीर उपस्थित। और एक दूसरा पहलू है जिसे कहते हैं अप्राकृत, सशरीर अनुपस्थित। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि कृष्ण मर गए हैं या भगवान मर गए हैं। उसका यह मतलब नहीं है, प्राकृत या अप्राकृत, सशरीर उपस्थित या अनुपस्थित इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, ११/१२/७३, लॉस एंजिल्स)

तो आध्यात्मिक रूप से वियोग का कोई प्रश्न नहीं उठता जबकि हो सकता है हमारे शरीर भौतिक रूप से बहुत दूर हों।

(श्यामा दासी को श्रील प्रभुपाद का पत्र, ३०/८/६८)

मैं कृष्ण भावनामृत की जानकारी को फैलाने के लिए प्रचार हेतु तुम्हारे देश गया और मेरे इस कार्य में तुम मदद कर रही हो। हालांकि मैं वहाँ तुम्हारे साथ सशरीर उपस्थित नहीं हूँ लेकिन आध्यात्मिक रूप से मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ।

(नंदरानी, कृष्ण देवी और सुबला को श्रील प्रभुपाद का पत्र, ३/१०/६७)

वास्तव में हम विछुड़े नहीं हैं। दो होते हैं — वाणी और वपु। तो वपु सशरीर उपस्थित है और वाणी शब्दों द्वारा उपस्थित है। लेकिन यह सब एकसमान है।

(हंसदूत को श्रील प्रभुपाद का पत्र, २२/६/७०)

तो गुरु की सशरीर उपस्थिति के अभाव में वाणी सेवा ज्यादा महत्वपूर्ण है। ऐसा प्रतीत हो सकता है कि मेरे गुरु सरस्वती गोस्वामी ठाकर भौतिक रूप से अनुपस्थित हैं फिर भी क्योंकि मैं उनके आदेश की सेवा करने का प्रयास कर रहा हूँ अतः मुझे उनसे कभी वियोग की अनुभूति नहीं होती।

(करंधरा को श्रील प्रभुपाद का पत्र, २२/८/७०)

मैं तो कभी अपने गुरु महाराज से वियोग का अनुभव नहीं करता। जब मैं उनकी सेवा में लगा रहता हूँ तो उनकी तस्वीरें मुझे पर्याप्त शक्ति प्रदान करती हैं। स्वामी के शब्द की सेवा उनके शरीर की सेवा से अधिक महत्वपूर्ण है।

(श्याम सुन्दर को श्रील प्रभुपाद का पत्र, १६/७/७०)

आदेश का अनुसरण करो, शरीर का नहीं

जहाँ तक गुरु के साथ व्यक्तिगत संग का प्रश्न है, मैं केवल चार या पाँच बार अपने गुरु महाराज के साथ था, लेकिन मैंने उनका संग कभी नहीं छोड़ा है, एक क्षण के लिए भी नहीं; क्योंकि मैं उनके आदेश का पालन कर रहा हूँ, मुझे कभी भी उनके वियोग का आभास नहीं हुआ। यहाँ भारत में मेरे कई गुरु भाई हैं जो निरन्तर मेरे गुरु महाराज के व्यक्तिगत संग में रहते थे, लेकिन वे उनके आदेशों की अवहेलना कर रहे हैं। यह उस कीड़े की तरह है जो राज की जाँघ पर बैठा रहा है। वह अपने पद के कारण बहुत घमण्डी हो सकता है, लेकिन केवल राज को काटने में ही सफल हो सकता है। व्यक्तिगत संग उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना सेवा के माध्यम से संग।

(सत्यधन को श्रील प्रभुपाद का पत्र, २०/२/७२)

तो आध्यात्मिक रूप से उपस्थित और अनुपस्थित, इसमें कोई अंतर नहीं....आध्यात्मिक रूप से ऐसा कोई अंतर नहीं है उपस्थिति या अनुपस्थिति। यद्यपि हमें वियोग की अनुभूति है जब हम ऊँ विष्णुपाद श्री श्रीमद् भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का तरोभाव महोत्सव मना रहे हैं, शोक का कोई कारण नहीं है, यद्यपि हम विरह महसूस कर रहे हैं।

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, १३/१२/७३, लॉस एंजिल्स)

मेरे गुरु महाराज तुम पर अति प्रसन्न होंगे....ऐसा नहीं है कि वे मर कर चले गए हैं। यह आध्यात्मिक सोच नहीं है।वे देख रहे हैं। मुझे कभी ऐसा नहीं लगता कि मैं अकेला हूँ।

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, २/३/७५)

वाणी, वपु से अधिक महत्वपूर्ण होती है।

(तृष्ण कृष्ण को श्रील प्रभुपाद का पत्र, १४/१२/७२)

हाँ, मैं यह सुनकर बहुत खुश हुआ कि तुम्हारा केन्द्र इतना अच्छा कर रहा है। और तुम सब लोग गुरु के आदेशों का पालन कर उनकी उपस्थिति महसूस कर रहे हो। यद्यपि वे सशरीर उपस्थित नहीं हैं। यही सच्ची भावना है।

(करंधरा को श्रील प्रभुपाद का पत्र, १३/६/७०)

गुरु अपने शब्दों द्वारा पीडीत व्यक्ति के हृदय को भेडकर दिव्य ज्ञान से भर सकता है। यह ज्ञान ही भौतिक अस्तित्व की ज्वाला को शांत कर सकता है।

(श्रीमद्-भागवतम्, १.७.२२, भावार्थ)

दो शब्द हैं वाणी एवं वपु। वाणी अर्थात् शब्द और वपु अर्थात् भौतिक शरीर। वपु खत्म हो जाएगी, इस भौतिक शरीर का अंत हो जाएगा, यही प्रकृति है। लेकिन यदि तुम वाणी से सम्पर्क बनाए रखोगे, गुरु के शब्दों से, तब हम स्थिर रह सकते हैं।....यदि तुम उच्च आदेशों के शब्दों एवं आदेशों से अपना अटूट सम्पर्क बनाए रखोगे तब तुम हमेशा उत्साहित रहोगे। यही आध्यात्मिक समझ है।

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, २/३/७५)

कभी यह नहीं सोचना कि मैं तुम्हारे साथ नहीं हूँ। सशरीर उपस्थिति आवश्यक नहीं है, संदेश (या श्रवण) द्वारा उपस्थिति ही असली सम्पर्क है।

(शिष्यों को श्रील प्रभुपाद का पत्र, २/८/६७)

कोई भी भौतिक अवस्था आध्यात्मिक अवस्था आध्यात्मिक ज्ञानार्जन में बाधा नहीं डाल सकती।

(श्रीमद्-भागवतम्, ७.७.१, तात्पर्य)

दिव्य वाणी की शक्ति, वक्ता की प्राकट्य अनुपस्थिति के कारण कभी हम नहीं होती।

(श्रीमद्-भागवतम्, २.६.८, तात्पर्य)

शिष्य और गुरु कभी अलग नहीं होते; क्योंकि जब तक शिष्य दृढतापूर्वक गुरु के आदेशों का पालन करता है तब तक गुरु शिष्य का साथ नहीं छोड़ता। इसे कहते हैं वाणी का संग। सशरीर उपस्थिति को वपु कहते हैं। जब तक गुरु सशरीर उपस्थित है तब तक शिष्य को गुरु के शरीर की सेवा करनी चाहिए और जब गुरु सशरीर उपस्थित नहीं है तो शिष्य को गुरु के आदेशों की सेवा करना चाहिए।

(श्रीमद्-भागवतम्, ४.२८.४७, तात्पर्य)

यदि गुरु की सेवा का प्रत्यक्ष अवसर न मिले तो भक्त को चाहिए कि वह उनके आदेशों को याद कर सेवा करे। गुरु के आदेशों व स्वयं गुरु में कोई अन्तर नहीं है। अतः उनकी अनुपस्थिति में उनके मार्गदर्शन के शब्द ही शिष्य का गर्व होना चाहिए।

(चैतन्य चरितामृत, आदि, १.३.५, तात्पर्य)

वे अपने दिव्य आदेशों द्वारा जीवित रहते हैं और अनुयायी उनके साथ रहता है।

(श्रीमद्-भागवतम्, भूमिका)

वह गलत है जो कहता है वैष्णवों की मृत्यु हो जाती है, जबकी वे अब तक वाणी में विद्यमान हैं।

(भक्ति विनोद ठाकुर)

हाँ, गुरु से विरह का आनन्द गुरु से मिलने के आनन्द से भी बढकर है।

(जादूरानी को श्रील प्रभुपाद का पत्र, १३/१/६८)

कृष्ण और उनके प्रतिनिधि एक ही हैं। जिस तरह कृष्ण लाखों जगहों पर एक ही समय पर विद्यमान रह सकते हैं, उसी प्रकार शिष्य जहाँ भी चाहे वहाँ गुरु उपस्थित हो सकते हैं। गुरु एक तत्त्व है, शरीर नहीं। यह उसी प्रकार है जिस तरह प्रसारण की तरंगों को ध्वनी और चलचित्र में परिवर्तन करने मूल सिद्धान्त के द्वारा हजारों जगहों पर टीवी देखा जा सकता है।

(मालती को श्रील प्रभुपाद का पत्र, २८/५/६८)

कृष्ण और गुरु की विप्रलम्भ सेवा करना बेहतर है। प्रत्यक्ष सेवा में कभी-कभी जोखिम होता है।

(मधुसूदन को श्रील प्रभुपाद का पत्र, ३०/१२/६७)

पुस्तकें ही पर्याप्त है।

भक्त : श्रील प्रभुपाद जब आप हमारे साथ नहीं होते तो आपसे आदेश ग्रहण करना कैसे संभव होगा ? उदाहरणार्थ प्रश्न जो उठ सकते हैं....

श्रील प्रभुपाद : प्रश्न और उत्तर.... उत्तर मेरी पुस्तकों में है।
(श्रील प्रभुपाद प्रात भ्रमण, १३/५/७३, लॉस एंजिल्स)

तो जो कुछ तुम्हें मिलता है उसका उपयोग कर मेरी पुस्तकों का गहन अध्ययन करने में लगाओ तब तुम्हारे सारे प्रश्नों का उत्तर मिल जाएगा।

(उपेन्द्र को श्रील प्रभुपाद का पत्र, ७/१/७६)

यदि तुम मंदिर जा सकते हो तो मंदिर का लाभ उठाओ। मंदिर ऐसी जगह है जहाँ व्यक्ति को भगवान श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष भक्तियुक्त सेवा का अवसर दिया जाता है। इसके साथ-साथ तुम हर रोज हमेशा मेरी पुस्तकों को पढो और तुम्हारे सारे प्रश्नों का उत्तर मिल जाएगा। और तुम्हारे कृष्ण-भावनामृत का पक्का आधार बनेगा। इस तरह तुम्हारा जीवन सफल हो जायेगा।

(हुगो सालेमोन को श्रील प्रभुपाद का पत्र, २२/११/७४)

तुम सबको मेरी पुस्तके प्रतिदिन कम से कम दो बार पढनी चाहिए, सवेरे और श्याम को और अपने आप ही सारे प्रश्नों का उत्तर मिल जाएगा।

(रणधीर को श्रील प्रभुपाद का पत्र, २४/१/७०)

मेरी पुस्तकों में कृष्ण-भावनामृत के दर्शन का पूर्णरूप से उल्लेख है अतः यदि ऐसी कोई चीज है जो तुम्हें समझ नहीं आती तो तुम्हें दुबारा पढना चाहिए। प्रतिदिन पढने से तुम्हें यह ज्ञान प्रकट होगा और इस प्रक्रिया से तुम्हारा आध्यात्मिक जीवन विकसित होगा।

(बहूरूप को श्रील प्रभुपाद का पत्र, २२/११/७४)

श्रील प्रभुपाद : शुद्ध भक्त के साथ क्षण मात्र का संग भी पूरी सफलता।

रेवतीनंदन : क्या यह शुद्ध भक्त के शब्दों को पढने पर भी लागू होता है ?

श्रील प्रभुपाद : हाँ।

रेवतीनंदन : क्या, आपकी पुस्तकों से थोड़ा संग का भी वैसा ही प्रभाव होता है ?

श्रील प्रभुपाद : प्रभाव। सही मायने में इसके लिए दोनों चीजें आवश्यक है। इसे प्राप्त करने की तीव्र इच्छा भी होनी चाहिए।

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, १३/१२/७०, इंदौर)

८० साल के बाद कोई ज्यादा समय तक जीवित रहने की अपेक्षा नहीं कर सकता। मेरी जीवन लगभग समाप्त हो चुका है। तुम्हें चलते रहना है, और चलते रहना है, और ये कितने सब कुछ करेंगी।

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, १८/२/७६)

परमहंस : मेरा प्रश्न यह है — एक शुद्ध भक्त, जब वह भगवद्-गीता पर टिप्पणी करता है, कोई व्यक्ति उन्हें सशरीर कभी नहीं देखता, लेकिन वह केवल टिप्पणी, व्याख्या के सम्पर्क में आता है, क्या यह एक ही बात ?

श्रील प्रभुपाद : हाँ। तुम भगवद्-गीता पढ़कर कृष्ण से संग कर सकते हो। और ये सारे साधु उन्होंने अपनी टिप्पणी, व्याख्याएँ दी है। तो इसमें कठिनाई कहाँ है ?

(श्रील प्रभुपाद प्रात भ्रमण, ११/६/७४, पेरिस)

नया कुछ भी कहना बाकी नहीं है। जो कुछ मुझे कहना था मैं अपनी पुस्तकों में कहा चुका हूँ। अब तुम्हें इसको समझना है और अपने प्रयास जारी रखने है। मैं उपस्थित रहूँ इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

(श्रील प्रभुपाद वार्तालाप, १७/५/७७, वृन्दावन)

यदि मैं चला जाऊँ तो शक का कोई कारण नहीं है। मैं अपनी पुस्तकों द्वारा और अपने आदेशों द्वारा सदा तुम्हारे साथ रहूँगा। मैं उसे तरह से तुम्हारे साथ रहूँगा।

(बी.टी.जी. भगवद् दर्शन, १३.१-२, दिसम्बर, १६७७)

श्रील प्रभुपाद हमारे शाश्वत गुरु है।

रिपोर्टर : जब आपकी मृत्यु होगी तो अमेरिका में आपके आन्दोलन का क्या होगा ?

श्रील प्रभुपाद : मेरी मृत्यु कभी नहीं होगी।

भक्तगण : जय ! हरि बोल ! (हँसी)

श्रील प्रभुपाद : मैं अपनी पुस्तकों से जीवित रहूँगा और तुम इनका उपयोग करोगे।

(श्रील प्रभुपाद का साक्षात्कार, १७/५/७५, बरकली)

भारतीय नारी :की क्या अपनी मृत्यु के बाद भी गुरु मार्गदर्शन करते है ?

श्रील प्रभुपाद : हाँ, हाँ। जिस तरह से कृष्ण हमारा मार्गदर्शन कर रहे है उसी तरह गुरु मार्गदर्शन करेंगे।

(श्रील प्रभुपाद प्रवचन, २३/६/६६)

एक शिष्य और गुरु का शाश्वत संबंध उसी दिन से शुरू हो जाता है जिस दिन से वह पहली बार श्रवण करता है।

(जादूरानी को श्रील प्रभुपाद का पत्र, १७/५/७५)

एक शुद्ध भक्त का प्रभाव इस प्रकार होता है कि यदि कोई थोड़ी श्रद्धा से उसका संग करने आता है, तो उसे भागवतम् जैसे प्रामाणिक शास्त्रों से भगवान के बारे में श्रवण करने का अवसर प्राप्त होता है।..... यह शुद्ध भक्तों के साथ संग करने का पहला चरण है।

(भक्तिरसामृत सिन्धु, अध्याय १६)

यह कोई साधारण पुस्तक नहीं है। यह रिकार्ड गया जाप है। जो भी पढ़ता है वह सुन रहा है।

(रूपानुग को श्रील प्रभुपाद का पत्र, १६/१०/७४)

परम्परा प्रणाली के विषय में, बड़े अंतरों के बारे में कई आश्चर्य होने की बात नहीं है.... हमें महत्त्वपूर्ण आचार्यों के चुनकर अनुसरण करना चाहिए।

(दयानंद को श्रील प्रभुपाद का पत्र, १२/४/६८)

वे महान आत्माएँ (गुरु परम्परा के सदस्य) केवल आकाश चमकते धूमकेतु की तरह नहीं हैं जो आकाश में कुछ समय के लिए प्रकट होते हैं और अपने उद्देश की पूर्ति के बाद अदृश्य हो जाते हैं। वे कई सूर्यों की भाँति हैं जो सदैव आने वाली पीढ़ियों को प्रकाश और गर्मी देते रहते हैं। बहुत लम्बा समय बीतना शेष है जब इन आत्माओं का उत्तराधिकार अन्य लोग लेंगे जो प्रविज मन, सुन्दरता और प्रतिभाशाली होंगे।

(भक्तिविनोद ठाकुर)

नारायण : तो वो शिष्य जिनके पास देखने या आपसे बात करने का अवसर या मौका नहीं है....

श्रील प्रभुपाद : वह वही बात कर रहा था, वाणी और वपु। यदि तुम उनके शरीर को ना भी देखो तब भी उनके शब्दों को लो, वाणी।

नारायण : लेकिन वे यह कैसे जान पाएँगे कि वे आपको संतुष्ट कर रहे हैं ?

श्रील प्रभुपाद : यदि तुम वास्तव में गुरु के शब्दों का अनुसरण करो तो इसका अर्थ है कि वह संतुष्ट है। और यदि तुम अनुसरण नहीं करते तब वह कैसे संतुष्ट हो सकते हैं।

सुदामा : केवल यही नहीं। आपकी कृपा सब तरफ फैली हुई है और यदि हम इसका लाभ उठाएँ तो अपने एक बार कहा था तब हमें परिणाम की अनुभूति होगी।

श्रील प्रभुपाद : हाँ।

जय अद्वैत : और यदि जो कुछ गुरु कह रहे हैं उसमें हमें श्रद्धा है तो अपने आप ही उसका पालन करेंगे।

श्रील प्रभुपाद : मेरे गुरु महाराज १६३६ में चल बसे और मैंने यह आन्दोलन १६६५ में शुरू किया, तीस साल के बाद। फिर ? मुझे अपने गुरु की कृपा मिल रही है। यही वाणी है। यदि गुरु भौतिक रूप से उपस्थित न भी यदि वाणी का पालन करो तो तुम्हें मदद मिलेगी।

सुदामा : अतएव जब तक शिष्य गुरु के आदेशों का पालन करता है तब तक वियोग का प्रश्न ही नहीं उठता।

श्रील प्रभुपाद : नहीं। 'चक्षु दान दिलो जेई'। वह क्या है, अगला ?

सुदामा : 'चक्षु दान दिलो जेई, जन्मे जन्मे प्रभु सेई'।

श्रील प्रभुपाद : 'जन्मे जन्मे प्रभु सेई', तो वियोग कहाँ है ? जिसने तुम्हारी आँखें खोली है वह जन्म-जन्मांतर तुम्हारा प्रभु है।

(श्रील प्रभुपाद प्रातः भ्रमण, २१/७/७५, सेन फ्रांसिस्को)

- मधुद्विषा : क्या एक देसाई बिना किसी गुरु का मार्गदर्शन लिये और केवल ईसा मसीह के उपदेशों को सच मानकर और उनका पालन करके आध्यात्मिक जगत जा सकता है ?
- श्रील प्रभुपाद : मुझे समझ नहीं आया ।
- तमाल कृष्ण गोस्वामी : क्या आज कोई ईसाई बिना गुरु के, परन्तु बाइबिल पढकर और ईसा मसीह के शब्दों को पालन कर, पहुँच.....
- श्रील प्रभुपाद : जब तुम बाइबल पढते हो तब तुम गुरु का अनुसरण करते हो । तुम यह कैसे कह सकते हो कि बिना गुरु के ? जैसे ही तुम बाइबल पढते हो उसका अर्थ है कि तुम ईसा मसीह के आदेशों का पालन कर रहे हो जिसका अर्थ है कि तुम गुरु का अनुसरण कर रहे हो । तो बिना गुरु के कहने का अवसर ही कहाँ है ।
- मधुद्विषा : मेरा मतलब था जीवित गुरु ।
- श्रील प्रभुपाद : गुरु कोई ऐसा विषय नहीं कि घुरु शाश्वत है । तो तुम्हारा प्रश्न है 'बिना गुरु के' । बिना गुरु के तुम अपने जीवन की किसी भी अवधि में नहीं रह सकते । तुम इसको गुरु स्वीकार करो या उसको गुरु स्वीकार यह अलग बात है लेकिन स्वीकार करना ही होगा । जैसकि तुमने कहा 'बाइबल पढने से', तो जब तुम बाइबिल पढते हो तो इसका मतलब है तुम ईसा मसीह को गुरु मान रहे हो, जिनके प्रतिनिधि कोई 'प्रीस्ट' या 'क्लर्जी' होते हैं ।

(श्रील प्रभुपाद प्रातः भ्रमण, २/१०/६८, सिया)

तुमने यह पुछा है कि क्या यह सत्य है कि जब तक सारे शिष्य आध्यात्मिक जगत को स्थानान्तरित न हो जाएँ गुरु उसी ब्रह्माण्ड में रहता है ? इसका उत्तर है – हाँ, यह एक नियम है ।

(जयपताका को श्रील प्रभुपाद का पत्र, ११/७/६६)